38

काव्य धारा

परमेश्वरानन्द शास्त्री

१६०८९

काव्य-धारा

(कविता-संग्रह)

सम्पादक

प्रो. परमेश्वरानंद शास्त्री

प्रिंसिपल—सनातन-धर्म संस्कृत कालेज लाहौर ।

प्रकाशक

सूरी ब्रदर्स गनपत रोड, लाहौर ।

प्रथम संस्करण] १९४१ [मूल्य १।)


हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन
हिन्दी-संग्रहालय, प्रयाग

काव्य-धारा

(कविता-संग्रह)

सम्पादक

प्रो. परमेश्वरानंद शास्त्री

प्रिंसिपल—सनातन-धम संस्कृत कालेज लाहौर ।

प्रकाशक

सूरी ब्रदर्स गनपत रोड, लाहौर ।

प्रथम संस्करण] १९४१ [मूल्य १।)

प्रकाशक—
श्री मदनलाल सूरी,
सूरी ब्रदर्स, गनपत रोड,
लाहौर।



मुद्रक—
श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'
भारती प्रिंटिंग प्रेस
हस्पताल रोड, लाहौर

विषय सूची

प्रवाह

कविता क्या है ?

जिस तरह कुञ्ज-वनों में कोकिला की ध्वनि अलग जान पड़ती है उसी तरह साहित्य-वाटिका में कविता का स्वर भी। काव्य की कोकिला पहली बार कब साहित्य के कुञ्ज में कूकी थी यह किसी भी इतिहास में नहीं लिखा। संस्कृति के प्रारम्भ में निर्मित होने वाले वेदमन्त्र भी कविता की वाणी में बोल रहे हैं। इसी से जान पड़ता है कि गद्य के पहले कविता ने यौवन पाया था।

कविता क्या है इस विषय में आज तक कोई ठीक ठीक नहीं कह सका। यह तो अमूर्त ब्रह्म की भाँति असीम और व्यापक वस्तु है। इसे परिभाषा की साड़ी कैसे पहनाई जावे ? मानव का मन भावना-विह्वल होकर छन्दों में बह पड़ता है—जैसे आकाश से मेघ बरसते हैं—पर्वत से झरना झरते हैं—फूलों में से सौरभ

उड़ता है—ऐसे ही कवि के हृदय से कविता फूटती है । इसे कोई कैसे बाँधे ? कविता तो अनुभूति की चीख या उद्‌गार है।

कविता का उपयोग

इस उपयोगितावाद के युग में कविता के प्रति लोगों की भावना उपेक्षामय सी हो चली है । वे कविता को एक मनोरंजन ही समझते हैं—कविता लिखना और कविता पढ़ना अपने समय की बर्बादी मानते हैं—लेकिन ऐसे भाव रखने वाले व्यक्ति एक कृत्रिम जगत् में निवास करते हैं इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं । कविता मानव को दुख के क्षणों में सांत्वना देती है, उसके सुख के पलों को अधिक मधुर बनाती है, उसकी विपत्ति के वज्र को पानी बनाती है और निराशा के अन्धकार में आशा की ज्योति जलाती है । कवि को केवल शब्दों का बाजीगर या विलास का वकील समझने वाले व्यक्ति कवि के उपकारों को नहीं जानते । कवि ने संसार को संस्कृति दी है, परतन्त्र देशों को मुक्ति दी है, पापियों को आँखें दी हैं । संसार पर कवि का जितना अधिकार है उतना सम्राटों का भी नहीं । सँसार की सभ्यता, सँस्कृति, राजनीति, धार्मिक भावनाएँ और जीवन की वृत्तियाँ कवि के स्वरों पर नाचती हैं। यही कवि का महत्व है और यही कविता का उपयोग है । विज्ञान का दीवाना नवयुग चाहे आज कवि और कविता से आंखें फेरना चाहे, लेकिन उसे इनके चरणों पर श्रद्धा के फूल चढ़ाने ही पड़ेंगे।

हिन्दी कविता

भारत की संस्कृति संसार की प्राचीनतम संस्कृति है। इसका साहित्य भी संसार का प्राचीनतम साहित्य है। प्राचीनतम ही नहीं उत्कृष्टतम भी है। संसार की आत्मा जब भ्रम की भँवर में पड़ती है भारतीय अध्यात्म ज्ञान ही उसे उसमें से बाहर निकालता है। दुर्दैव के चक्र ने भारत को गुलाम बना दिया है और उसके ज्ञान के दीपक पर धूल जम गई है—फिर भी उसकी किरणों में वही प्रकाश का पुञ्ज है। उसी प्रकाश की किरणें—कबीर, सूर, तुलसी और रवीन्द्र जैसी महान आत्माओं के रूप में संसार की आँखों में चकाचौंध भरती दिखाई देती हैं। आज भी ऐसा कौन है जो भारत की इन विभूतियों से आँखें मिला सके ?

संसार में परिवर्तन की आंधी—तथा समय की मंथर चाल, देशों की आकृति—आचार-विचार और राजनीतिक स्थितियों में निरंतर परिवर्तन करती रहती है। भारत में जहां अनेक बातों में परिवर्तन हुए वहां साहित्य की भाषा भी बदलती रही। संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से ब्रज और ब्रज से खड़ी बोली और खड़ी बोली से अब हिंदुस्तानी-ऐसे ही परिवर्तन इस देश की भाषा में आते रहे। देश के विस्तार ने अनेक प्रांतीय भाषाओं को जन्म और विकास दिया। मैं इन परिवर्तनों के मूल में नहीं जाना चाहता।

हिंदी कविता का उत्कृष्ट रूप पृथ्वीराज चौहान के समय से दिखाई देता है, जब चंद बरदाई ने अपनी वाणी से

वीरों के खून में उत्तेजना भर दी थी। चंद के पहले हिंदी में कविता नहीं लिखी गई इस बात को मैं नहीं मानता, लेकिन वह समय की आँधी में सुरक्षित न रह सकी। हाँ, चंदबरदाई की कविता एक ऐसी सम्पत्ति थी जिसे देश ने तूफान के दिनों में भी छाती से चिपकाए रखा और किसी न किसी रूप में आज भी हम उसे पढ़ पाते हैं।

समय और राजनीति के परिवर्तनों के साथ हिंदी कविता की भाषा और भावनाएँ बदलती रहीं। वास्तव में देखा जावे तो किसी देश या जाति का वास्तविक इतिहास उसके साहित्य में मिलता है। राजाओं के जीवन की कहानी ही तो देश का इतिहास नहीं है, उसकी संस्कृति, धर्म, सामाजिक नियम, आर्थिक स्थिति और मानवीय भावनाओं के उलट-फेर भी उस देश का इतिहास हैं—जो कि इतिहास की पुस्तकें नहीं साहित्य ही बताता है। हमारी हिंदी कविता के विकास को देखने से राजनीतिक उलट-फेरों का पता स्पष्ट रूप से लगता है।

हिंदी कविता में जो उलट-फेर हुए, उन्हें कविवर श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' ने अपने एक लेख में बड़े सुन्दर शब्दों में इस तरह कहा है:—

'वह वीरों के यशोगान से प्रारंभ हुई, देवता पर फूल चढ़ाने लगी, नारी के शरीर से लिपटी, हिंदू जाति का दर्पण बनी, राष्ट्र का शंखनाद बनी, रहस्य की झांकी बनी, जड़

में चेतन के दर्शन कराने वाली दूरबीन बनी और अब क्रांति की दूतिका बनी है ।"

प्रेमी जी ने कितने सुंदर शब्दों में हिंदी कविता के क्रम-विकास की तस्वीर खींच दी है। उनके कहने का तात्पर्य्य यह है कि हिंदी में क्रमशः इन धाराओं की कविताएँ लिखी गईं—

(१) वीर भावनाओं की धारा ।
(२) भक्ति रस की धारा ।
(३) शृंगार रस की धारा ।
(४) जातीय भावनाओं की धारा।
(५) राष्ट्रीय भावनाओं की धारा।
(६) रहस्यवाद की धारा ।
(७) छायावाद की धारा ।
(८) क्रांतिकारी भावनाओं की धारा।

इन परिवर्तनों के कारण हमारे इतिहास में स्पष्ट मिलते हैं । साहित्य तो समाज का दर्पण है । ज्यों-ज्यों समाज की तस्वीर बदलती गई, साहित्य में दिखाई देने वाली आकृति भी बदलती गई । जब यहां तलवार का युग था—राजपूत राजा शारीरिक बल पर अभिमान करते थे तब हमारी कविता वीर रस की भावनाओं से भर पूर थी—फिर मुसलमानों के आगमन ने भारत के शारीरिक बल को क्षीण कर दिया तब देश का हृदय भगवान के चरणों में आश्रय लेने लगा।

और भक्ति-रस की कविता प्रवाहित होने लगी—फिर मुसलमान और हिंदू लड़-झगड़ कर शांत हो गए—उस युग में शृंगार-रस की ओर लोगों का झुकाव हुआ। फिर इतिहास ने पलटा खाया। मुसलमानों की शक्ति भी गई और अंग्रेज़ों का आगमन हुआ। यहाँ पहले जातीय भावनाएँ जागीं-और फिर राष्ट्रीय, इसीलिए पहले जातीय फिर राष्ट्रीय कविताएँ लिखी जाने लगीं। इसी के साथ देश में फिर से अध्यात्मिक भावनाएँ भी जागीं—जिनका प्रतीक महात्मा गाँधी हैं—इसीलिए रहस्यवाद और छायावादी रचनाएँ लिखी गईं। इन दिनों साम्यवाद ने अपनी ओर लोगों को आकृष्ट किया जिसके प्रभाव से ऐसी कविताएँ लिखी गईं जिन में संपूर्ण संसार में व्याप्त सामाजिक विषमता के विरुद्ध विद्रोह की भावनाएँ हैं।

राष्ट्रीय भावनाओं के जागरित होने के कारण संपूर्ण भारत एकता के सूत्र में बँध गया। इसी कारण एक राष्ट्रीय भाषा का प्रचार हुआ—जोकि खड़ी बोली कहाई। पहले प्रायः ब्रज भाषा में कविता लिखी जाती थी। अब संपूर्ण देश में—साहित्य के प्रत्येक अङ्ग में खड़ी बोली का ही प्राधान्य है।

रहस्यवाद और छायावाद

रहस्यवाद और छायावाद के नाम से आज कल बहुत कुछ लिखा जा रहा है। यह रहस्यवाद और छायावाद क्या बला है, इस विषय में बड़ा मत-भेद है। इन शब्दों को लेकर साहित्यिक महारथी भी झगड़ते हैं।

मेरी अपनी राय में रहस्यवाद उस प्रवृत्ति को कहते हैं जो परमात्मा के साथ आत्मा का सम्बन्ध स्थापित करती है। परमात्मा के स्नेह-सम्बन्ध की अनुभूतियों का वर्णन ही रहस्य-वादी कविताएँ हैं—इन कविताओं का आधार भारत का प्राचीन अध्यात्म-दर्शन ही है। जो लोग कहते हैं - यह अंग्रेज़ी साहित्य की देन है वे भ्रम में हैं। हिंदी के प्राचीन सन्त कवियों की साधना और अनुभूतियाँ नया आकार लेकर आधुनिक रहस्यवाद में प्रकट हुई हैं।

इसी तरह छायावाद भी जड़ वस्तुओं में चेतन का अनुभव करना है। संसार की प्रत्येक वस्तु में मानवीय भावनाओं का आरोप करना छायावाद है। किसी भी जड़ वस्तु का इस प्रकार वर्णन करना मानो उसमें भी मानव के समान आत्मा है—छायावाद है।

इस दृष्टिकोण से देखने पर आधुनिक रहस्यवाद की रचनाएँ सरलता से समझी जा सकती हैं।

इस कविता-संग्रह में मैंने प्रयत्न किया है कि हिंदी की सभी धाराओं की कविताएँ आ जावें। चूँकि यह संग्रह विद्यार्थियों के उपयोग के लिए है, अतः शृंगाररस का समावेश इसमें नहीं हो सका।

यह संग्रह कवियों या कविताओं का इतिहास नहीं है इसलिए स्थान कम होने के कारण जिन कवियों को छोड़ दिया है, वे संग्रहकर्ता को क्षमा कर देंगे ऐसी आशा है।

—सम्पादक

कबीर

[जन्म—सम्वत १४५५—मृत्यु १५७५]



इनके जन्म के विषय में अनेक बातें कही जाती हैं। सबसे अधिक प्रचलित मत यह है कि काशी की विधवा ब्राह्मणी से य उत्पन्न हुए थे। उस ब्राह्मणी ने अपयश से डरकर इन्हें लहर तारा के पास छोड़ दिया। नीरू नाम का एक जुलाहा उस बालक को ले आया।

कबीर बचपन से ही हिन्दू धर्म में बड़ी आस्था रखते थे। भक्ति पूजा करते। कपाल पर तिलक लगाते। फिर इन्होंने स्वामी रामानंद को अपना गुरु बनाना चाहा, किन्तु, उन्होंने इन्हें मुसलमान समझ कर दीक्षा न दी। फिर भी ये अपनी साधना से विरत न हुए। एक बार एक पहर रात रहते उस घाट की सीढ़ियों पर लेट गए जहाँ से रामानंद जी गंगा-स्नान को जाते थे। अँधेरेमें रामानन्द जी का पैर उनके ऊपर पड़ा।

रामानंद जी के मुँह से अनायास 'राम-राम' निकल पड़ा। कबीर ने इन्हीं शब्दों को गुरुमंत्र मानकर रामानंद जी को अपना गुरु मान लिया।

बाद में कबीर दास ने अनेक सन्तों और फ़कीरों का सत्संग किया और अपने ज्ञान और भक्ति में वृद्धि की। सूफी फ़कीर शेख तकी का भी कबीर साहब पर बड़ा प्रभाव था।

कबीर की भक्ति साकार ईश्वर से विकसित होकर निराकार ब्रह्म पर स्थापित होगई थी। इन्होंने अवतार, मूर्ति, रोज़ा, मन्दिर, मस्जिद आदि का खंडन किया है। ये हिंदुओं के ईश्वर और मुसलमानों के खुदा में कोई भेद नहीं मानते थे।

इन्होंने अपनी कविताओं में ईश्वर का वास्तविक रूप दिखाया है, लोगों को सत्य-धर्म का उपदेश दिया है। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इनकी कविताओं से प्रभावित हैं। इनके पंथ में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही है।

इनकी कविताओं में पांडित्य नहीं है, हृदयके सच्चे उदगार हैं।ये एक सच्चे संत हैं, इनके शब्द एक सफल साधक की सीधी सादी वाणी हैं। किन्तु उनमें ऐसे गम्भीर तत्व हैं कि संसार की श्रेष्ठतम कविताओं में इनकी वाणी को स्थान मिलता है। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इनके कुछ शब्दों का अँग्रेज़ी में अनुवाद किया है।

———

दोहे

कबिरा ज‍ंत्र न बाजई टूटि गए सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करे चला बजावन हार॥

दुर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वांस से लोह भस्म ह्वै जाय॥

आन गई, आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनों तबहीं गए जबहिं कहा कछु देह॥

शब्द बराबर धन नहीं, जो कोई जाने मोल।
हीरा तो दामों मिलै सब्दहिं मोल न तोल॥

साधू ऐसा चाहिए जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै थोथा देइ उड़ाय॥

साधू गाँठि न बाँधई उदर समाता लेय।
आगे पाछे हरि खड़े जब माँगे तब देय॥

साँई इतना दीजिए जा में कुटुम्ब समाय ।
मैं भी भूखा न रहूं साधु न भूखा जाय ॥

बाजी गर का बंदरा ऐसा जिउ मन साथ ।
नाना नाच नचायकै राखै अपने साथ ॥

गोधन, गजधन, वाजिधन, और रतन धन खान ।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान ॥

निराकार की आरसी, साधौ ही की देह ।
लखा जो चाहै अलख को, इनही में लखि लेह ॥

जाति न पूछो साधु की पूछि लीजिए ज्ञान ।
मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान ॥

कबिरा गर्व न कीजिये, काल गहे कर केश ।
ना जानौं कित मारि है, क्या घर क्या परदेस ॥

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुस की जात ।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥

माली आवत देखिकै कलियाँ करें पुकार ।
फूली-फूली चुनि लिए कालि हमारी बार ॥

हम जानैं थे खायँगे बहुत जमे बहुमाल ।
ज्यों का त्यों ही रह गया पकरि लै गया काल ॥

छिमा बड़न को चाहिए छोटन की उत्पात ।
कहा विष्णु को घट गयो जो भृगु मारी लात ॥

जों जल बाढ़ै नाव में घर में बाढ़ै दाम ।
दोऊ हाथ उलीचिए यहि सज्जन को काम ।।

धीरे धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचै सौ घड़ा ऋतु आए फल होय ।।

सबतें लघुताई भली लघुता ते सब होय ।
जस दुतिया को चन्द्रमा सीस नवे सब कोय ।।

कबिरा सोई पीर है जो जाने पर पीर ।
जो पर पीर न जानई सो काफिर बेपीर ।।

करु बहियाँ बल आपनी छाँड़ बिरानी आस ।
जाके आँगन नदीं है सो कस मरै पियास ।।

प्रेम प्रीत से जो मिलै तासों मिलिए धाय ।
अंतर राखै जो मिलै तासों मिलै बलाय ।।

'कबिरा' आप ठगाइए और न ठगिए कोय ।
आप ठगै सुख ऊपजे और ठगे दुख होय ।।

वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखैं, नदी न संचैं नीर ।
परमारथ के कारने साधू धरा सरीर ।।

सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार ।
ताको काल कहा करै जो आठ पहर हुसियार ।।

नाँव न जानौं गाँव का, बिन जानै कित जाँव ।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गाँव ।।

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूंढें बन माहिं ।
ऐसे घट में पीव है, दुनिया जानै नाहिं ॥

बोलत ही पहिचानिए साहु चोर को घाट ।
अंतर की करनी सजै निकसे मुख की बाट ॥

तिनका कबहुँ न निन्दिये, जो पाँयन तर होय ।
कबहूं उड़ि आँखिन परै पीर घनेरी होय ॥

हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत ।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरि ही देत ॥

शब्द

साधो ई मुरदन के गाँव !

पीर मरे, पैगंबर मरिगे, मरिगे जिंदा जोगी ।
राजा मरिगे, परजा मरिगे, मरिगे बैद औ' रोगी ॥

चन्दौ मरिहैं, सुरजौ मरिहैं, मरिहैं धरनि अकासा ।
चौदह भुवन चौधरी मरि हैं इनहुन कै का आसा ।

नौ हू मरिगे दसहू मरिगे, मरिगे सहस अठासी ।
तैंतीस कोटि देवता मरिगे, परिगे काल की फाँसी ॥

नाम अनाम रहे सो सदाही, दूज तत्त न होई ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, भटकि मरै मति कोई ॥

साधो यह तन ठाठ तँबूरे का।

ऐंचत तार, मरोरत खूंटी, निकसत राग हजूरे का।
टूटे तार, बिखर गई खूंटी, होगया धूरम धूरे का॥

या देही का गरब न कीजै उड़ि गया हंस तँबूरे का।
कहत कबीर सुनो भाई साधो अगम पंथ कोई सूरेका॥

हम तौ एक एक करि जाना।

दोई कहैं तिनही को दोजख जिन नाहिन पहिचाना।

एकै पवन एक ही पानी, एक जोति संसारा॥
एक ही ख़ाक गढ़े सब भांडे, एक ही सिरजन हारा!

जैसे बाढ़ी काष्ठ ही काटै अगिनि न काटै कोई।
सब घट अंतर तूही व्यापक, धरै सरूपै सोई॥

ओ इन दोउन राह न पाई।

हिंदुअन की हिंदुआई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई।

हिंदू कहैं मोहि राम पियारा तुरक कहैं रहिमाना।
आपस में दुहि लरि लरि मूए मरम न काहू जाना।

धुबिया जल बिच मरत पियासा !

जल में ठाढ़े पियै नहिं मूरख, अच्छा जल है खासा।
अपने घट के मरम न जानै कर धुबियन कै आसा।

छिन में धुबिया रोबे धोवे; छिन में होय उदासा।
आपै बटे करम की रसरी आपन गर कै फाँसा।

सच्चा साबुन लेहि न मूरख, है सन्तन के पासा।
दाग पुराना छूटत नाहीं, धोवत बारह मासा।

एक रती कौ जोरि लगावै छोरि दिये भरि मासा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, आछत अन्न, उपासा।

मलिक मुहम्मद जायसी



मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी के सूफी कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए हैं। उनके जन्म और मरण की तिथियों का अभी तक ठीक निश्चय नहीं हो सका है। प्रसिद्ध मुगल सम्राट शाहजहाँ के शासन-काल में इन्होंने अपनी पुस्तकें लिखी हैं।

ये अवध प्रांत के जायस नामके कस्बे के रहने वाले थे। सुनते हैं कि इनके समय में अमेठी के जो राजा थे उनको इनकी दुआ से पुत्र प्राप्त हुआ था इसलिए उस राजघराने में इनका बड़ा मान था। इनकी कब्र वहां के राजभवन के सामने है।

ये यद्यपि मुसलमान थे, किंतु इन्होंने हिंदुओं की कहानियों को अपने काव्यों में अङ्कित किया है। हिन्दुओं की धार्मिक भावनाओं, रीति-रिवाजों

और संस्कृति का ऐसा सरस, सजीव और सच्चा चित्र इन्होंने खींचा है कि ऐसा जान पड़ता है मानो ये हिंदुत्व से एकरूप हो गए हैं।

इनका पद्मावत काव्य सुन्दर भावनाओं के कारण सदा अमर रहेगा। इस पुस्तक में चित्तौड़ के राणा रतनसेन और महारानी पद्मिनी का हाल लिखा है। इसमें लौकिक प्रेम की सरस और कोमल भावनाओं को अलौकिक और आध्यात्मिक भावनाओं की सीमा तक ये ले गए हैं। अवधी-भाषा में दोहा और चौपाइयों में यह ग्रन्थ तथा इसके अतिरिक्त अखरावट और आखिरी कलाम नाम के दो और ग्रन्थ इन्होंने लिखे हैं।

हिंदु–मुसलमानों की संस्कृतियों को निकट लाने का श्रेयस्कर कार्य करने वाले व्यक्तियों में जायसी का नाम भी आदर से लिया जावेगा।

जायसी की कविता में काव्य के सभी गुण उत्कृष्ट रूप में पाए जाते हैं।

सुआ

पदुमावति तहँ खेल दुलारी।
सुआ मँदिर महँ देख मँजारी ॥

कहेसि चलउँ जउ लहि तन पांखा।
जिउ लेइ उडा ताकि बन-ढाँखा ॥

आइ परा बन-खँड जिउ लीन्हे ।
मिले पंखि बहु आदर कीन्हे ।

आनि धरे आगइ सब साखा ।
भुगुति न मेटइ जउ लहि राखा।

पाई भुगुति सुक्ख मन भयऊ ।
अहा जो दुक्ख बिसरि सब गयऊ।

अइ गोसाइँ तूँ अइस विधाता ।
जावँत जिउ सब कर भख-दाता।

पाहन महँ न पतंग बिसारा ।
जहँ तोहि सवँर देहि तूँ चारा ॥

तउ लहि सोग बिछोह कर भोजन परा न पेट ।
पुनि बिसरा भा सवँरना जनु सपने भइ भेंट ॥

पदुमावति पहँ आइ भँडारी ।
कहसि मँदिर महँ परी मँजारी ॥

सुआ जो उतर देत अहा पूँछा ।
उडि गा पिंजर न बोलइ छूँछा ॥

रानी सुना सूखि जिउ गएऊ ।
जनु निसि परी असत दिन भएऊ ॥

गहनहिं गही चांद कइ करा ।
आंसु गगन जनु नखतन्ह भरा ॥

टूट पालि सरवर बहि लागे ।
कवँल बूड मधुकर उडि भागे ॥

एहि बिधि आंसु नखत होइ चुए ।
गगन छांडि सरवर भरि उए ॥

छिहुरि चुई मोतिन्ह कइ माला ।
अब संकेत बांधा चहुँ पाला ॥

उडि यह सुअटा कहँ बसा खोजहु सखि सो बासु ।
दहुँ हइ धरती की सरग पवन न पावइ तासु ॥

चहूँ पास समुझावहिं सखी ।
कहाँ सो अब पाइअ गा पँखी ॥
जउ लहि पिंजर अहा परेवा ।
रहा बांद कीन्हेसि निति सेवा ॥
तेहु बँद हुति छूटइ पावा ।
पुनि फिरि बंद होइ कित आवा ॥
वह उडान-फर तहिअइ खाए ।
जब भा पंखि पांख तन पाए ॥
पिंजर जेहि क सउंपि तेहि गएऊ ॥
जो जा कर सो ता कर भएऊ ॥
दस बाटइं जेहि पिंजर माहाँ ।
कइसइ बाँच मँजारी पाहाँ ॥
एहि धरती अस केतन लीले ।
तस पेट गाढ बहुरि नहिं ढीले ॥
जहां न राति न दिवस हइ जहां न पवन न पानि ।
तेहि बन होइ सुअटा बसा को रे मिलावइ आनि ॥
सुअइ तहां दिन दस कलि काटी ।
आइ बिआध ढुका लेइ टाटी ॥
पगइ पगइ भुइँ चांपत आवा ।
पंखिन्ह देखि हिअइ डर खावा ॥

देखहु किछु अचरज अनभला ।
तरिवर एक आवत हइ चला ॥
एहि बन रहत गई हम आऊ ।
तरिवर चलत न देखा काऊ ॥
आजु जो तरिवर चल भल नाहीं ।
आवहु एहि बन छांडि पराहीं ॥
वेइ तउ उडे अउरु बन ताका ।
पंडित सुआ भूलि मन थाका ॥
साखा देखि राजु जनु पावा ।
बइठ निचिंत चला वह आवा ॥
पांच बान कर खोंचा लासा भरे सो पांच ।
पांख भरे तन अरुझा कित मारइ बिनु बांच ।
बँद भा सुआ करत सुख केली ।
चूरि पांख धरि मेलेसि डेली ॥
तहवां पंखि बहुत खरभरहीं ।
आपु आपु महँ रोदन करहीं ॥
बिख-दाना कित देइ अंगूरा ।
जेहि भा मरन डहन धर चूरा ॥
जउं न होत चारा कइ आसा ।
कित चिरि-हार ढुकत लेइ लासा ॥

एहि झूठी माया मन भूला ।
चूरइ पाँख जइस तन फूला ॥

यह मन कठिन मरइ नहिं मारा ।
जार न देखु देखु पइ चारा ॥

हम तउ बुद्धि गवाँई बिख-चारा अस खाइ ।
तूं सुअटा पंडित हता तूं कित फांदा आय ॥

सुअइ कहा हम-हूँ अस भूले ।
टूट हिंडोल गरब जेहि भूले ॥

केला के बन लीन्ह बसेरा ।
परा साथ तहं बइरिन्ह केरा ॥

सुख कुरआर फरहुरी खाना ।
बिख भा जबहिं बिआध तुलाना ॥

काहे क भोग-बिरिख अस फरा ।
आड लाइ पंखिन्ह कहँ धरा ॥

होइ निचिंत बइठे तेहि आडा ।
तब जाना खोंचा हिए गाडा ॥

सुख निचिंत जोरत धन करना ।
यह न चिंत आगइ हइ मरना ॥

भूले हम-हुँ गरब तेहि माहाँ ।
सो बिसरा पावा जेहि पाहां ॥

चरत न खुरुक कीन्ह जब तब रे चरा सुख सोइ ।
अब जो फांद परा गिउ तब रोए का होइ ॥

सुनि कइ उतर आंसु सब पोंछे ।
कउनु पंख बाँधे बुधि ओछे ॥

पंखिन्ह जउँ बुधि होइ उँजिआरी ।
पढा सुआ कित धरइ मँजारी ॥

कित तीतर बन जीभ उघेला ।
सो कित हँकारि फाँद गिउ मेला ॥

ता दिन व्याध भएउ जिउ-लेवा ।
उठे पाँख भा नाउँ परेवा ॥

भइ बिआधि तिसिना संग खाधू ।
सूझइ भुगुति न सूझ बिआधू ॥

हमहिँ लोभ वह मेला चारा ।
हमहिं गरब वह चाहइ मारा ॥

हम निचिंत वह आउ छपाना ।
कउनु बिआधहि दोस अपाना ॥

सो अउगुन कित कीजिए जिउ दीजिअ जेहि काज ॥
अब कहना किछु नाहीँ मसटि भली पँखि-राज ॥

———

सूरदास

[जन्म—सं०—१५४०; मृत्यु—१६२०]



महाकवि सूरदास की जन्मभूमि दिल्ली के पास सीही नामक ग्राम है। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। इन के पिता का नाम रामदास था। इनका परिवार बहुत ही दीन और दरिद्र था। सूरदास जन्मान्ध नहीं थे। कहते हैं कि आप एक बार एक सुन्दरी पर मुग्ध हो गए किन्तु सुन्दरी के शुभाचरण से वे बहुत लज्जित हुए और उसी से अपनी आँखें फुड़वा लीं। ये वल्लभाचार्य के शिष्य थे। इन्होंने ६७ वर्ष की उम्र में सूरसारावली नामक पुस्तक लिखी। इनका सर्व श्रेष्ठ ग्रन्थ सूर सागर है। इनकी सभी कविताएँ गेय हैं। इनकी कविता में प्रसाद गुण के साथ साथ लालित्य और स्वाभाविकता का इतना सुन्दर सामञ्जस्य है कि पढ़ते ही बनता है। इन के पद्य कृष्ण भक्ति से ओत प्रोत और अल्हड़-

पन: लिए हुए हैं। वात्सल्य रस के तो आप साकार मूर्ति हैं। बाल लीला, गोपी-विरह, ऊधो-गोपी सम्वाद नितान्त ही सरस और मर्मस्पर्शी हैं। आप का कृष्ण के साथ सख्य भाव का सम्बन्ध पठनीय है। ब्रज-भाषा के महा काव्यों में और महाकवियों में सूरसागर और सूरदास अग्रणी हैं। इसीलिए एक कवि ने कहा भी है कि—

सूर सूर, तुलसी शशी, उडुगन केशवदास।
अबके कवि खद्योत सम, जँह तँह करत प्रकास॥

इन की मृत्यु ८० वर्ष की अवस्था में हुई। उपर्युक्त दो ग्रन्थों के अतिरिक्त सिवा ब्याहलो, नल दमयन्ती और हरिवंश की टीका भी आपने लिखी है।

पद

१

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहैं ।

ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहैं ।।
घर के कहैं बेग ही काढ़ो भूत भये कोउ खैहैं ।
जा प्रीतम से प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहैं ।।
कहँ वह ताल कहाँ वह सोभा देखत घूर उड़ैहैं ।
भाई बन्धु कुटुम्ब कबीला सुमिरि सुमिरि पछतैहैं ।।
बिन गोपाल कोऊ नहिं अपना जस कीरति रहि जैहैं ।
सो तो "सूर" दुर्लभ देवन को सतसंगति में पैहैं ।।

२

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिरि जहाज पर आवै ॥
कमल नयन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अंबुजरस चाख्यो क्यों करीलफल खावै ।
"सूरदास" प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावे ॥

३

यशोदा हरि पालने झुलावै ।
हलरावैं दुलराइ मल्हावैं जोइ सोई कछु गावैं ॥
मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे न वेगी सी आवे तोको कान्ह बुलावै ॥
कबहूँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहूँ अधर फरकावैं ।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रही कर कर सैन बतावैं ॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरे गावैं ।
जो सुख 'सूर' अमर मुनि दुर्लभ सो नंदभामिनि पावैं ॥

४

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई।

खेलत कुंवर कनक-आँगन में, नैन निरखि थवि छाई॥
कुलहि लसति सिर स्याम सुभग अति बहु विधि सुरंग बनाई।
मानों नव घन ऊपर राजत मेघवा-धनुष चढ़ाई॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख बगराई।
मानों प्रगट कंज पर मंजुल अलि-अवली फिरि आई॥
नील सेत पर पीत लालमनि लटकन भाल लुनाई।
मुनि गुरु-असुर देव-गुरु मिलि मनों लाल सहित समुदाई॥
दूध-दंत-दुति कहि न जाति अति अद्‌भुत इक उपमाई।
किलकत हँसत दुरत प्रगटत मनु घन में बिज्जु छपाई॥

५

ऊधो अँखियाँ, अति अनुरागी।

इकटक मग जोवति अरु रोवति, भूलेहँ पलक न लागी॥
बिन पावस पावस-रितु आई, देखत हौ विद्‌मान।
अबधौं कहा कियो चाहत हौ, छाँड़हु नीरस ज्ञान॥
सुनु प्रिय सखा स्यामसुन्दर के, जानत सकल सुभाव।
जैसै मिलैं 'सूर' हमको, सो कछु करहु उपाव॥

६

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी।

कैसे रहैं रूप रस राँची ये बतियां सुनि रूखी।
अवधि गनत इकटक मग जोवत तब ये तौ नहिं भूखी।
अब इन जोग सँदेसनि ऊधो, अति अकुलानी दूखी ॥
बारक वह मुख फेरि दिखावहु दुहि पय पिवत पतूखी।
'सूर' जोग जनि नाव चलावहु ये सरिता हैं सूखी ॥

७

ऊधो मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं।

हंस सुता की सुन्दर कमरी अरु कुंजन की छाहीं ॥
वे सुरभी, वे वच्छ, दोहिनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं ॥
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि मुकताहल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत तनु नाहीं ॥
अनगन भाँति करी बहुलीला जसुदानंद निबाहीं।
'सूरदास' प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछताहीं ॥

———

मीरा बाई

[जन्म सं० १५७३—मृत्यु—१६०३]



गिरधर पर बावली भक्त मीरा का जन्म मेड़तिया के राठौर रत्न-सिंह के घर हुआ था। इनका विवाह उदयपुर के महाराणा भोजराज के साथ हुआ। इनका चित्त शैशव से ही कृष्ण-भक्ति में तल्लीन रहा करता था। और उस अवस्था से ही ये कृष्ण-मूर्ति के सम्मुख आत्म विस्मृत होकर नृत्य करने लग पड़ती थीं। मीरा का अधिकांश समय साधु सन्तों की संगति में ही व्यतीत होता था। कुछ समय के बादही आप विधवा हो गई और इसके साथही साथ आपके चित्त-निर्झर का निर्मल स्रोत भी पूर्ण रूपेण कृष्ण की ओर बह चला। अहिर्निश गिरधर नागर की उपासना ही आप का एक मात्र कार्य रह गया। मतवाली मीरा को लोक-लज्जा से तिलाञ्जलि देता देखकर उन के

देवर राणा विक्रमाजीत ने उन्हें घर की ओर मोड़ने का पर्याप्त प्रयत्न किया किन्तु असफलता पाकर विष का प्याला और साँप आदि भी भेजे, परन्तु कृष्ण-कृपा से उन पर उसका कुछ भी प्रभाव न हुआ। मीरा ने महाकवि तुलसीदासजी को अपनी कठिनाइयाँ लिखी और ईप्सित उत्तर प्राप्त कर वृन्दाबन को चली गईं। मीरा का कृष्ण-प्रेम पति पत्नी के रूप में ही दृष्टिगोचर होता है। आप के गेय पद बहुत ही सुन्दर और विमुग्धकारी हैं। इनके कुछ पद राजस्थानी-मिश्रित भाषा में हैं और कुछ शुद्ध ब्रजभाषा में। इनकी प्रत्येक पंक्ति तल्लीनता-पूर्ण और आत्म निवेदित सी लक्षित होती है। प्रेमातिरेक से इनकी चीजें बहुत ही उत्तम बन पड़ी हैं। भाषा की सरलता तो और भी हृदयग्राही है। इनके दो ग्रन्थ बतलाए जाते हैं। नरसी जी का मायरा और रास—गोविन्द ।

पद

१

प्रभु बिन ना सरै माई।

मेरा प्रान निकस्या जात हरी बिन ना सरै माई॥
कमठ दादुर बसत जल में जल से उपजाई।
मीन जल से बाहर कीना तुरत मर जाई॥
काठ लकरी बन परी काठ घुन खाई।
ले अगन प्रभु डार आये भसम हो जाई॥
बन बन ढूँढत मैं फिरी आली सुधि नहिं पाई।
एक बेर दरसण दीजै सब कसर मिटि जाई॥

———

पात ज्यों पीरी परी अरु विपत तन छाई ।
दास 'मीरा' लाल गिरधर मिल्या सुख छाई ॥

२

पायौं जी मैंने राम-रतन धन पायौ ।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर, करि किरपा अपणायौ ।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सवै खोवायौ ॥
खरचै नहिं कोई चोर ना लेवै, दिन दिन बढ़त सवायौ ।
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तरि आयौ ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, हरखि हरखि जस गायौ ॥

३

मेरो तो एक राम नाम दूसरा न कोई ।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई ॥
भाई छोड़या, बन्धु छोड़या, छोड़या सगा सोई ।
साध संग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥
भगत देख राजी भई, जगत देख रोई ।
प्रेम नीर सींच सींच विष बेल धोई ॥

दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दियो छोई।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई॥
अब तो बात फैल पड़ी जाने सब कोई।
'मीरा' राम लगन लगी होनी होय सो होई॥

———

४

मन रे! परस हरि के चरन।
सुभग सीतल कमल-कोमल, त्रिबिध-ज्वाला हरन॥
जे चरन प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरन॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों राखि अपने सरन।
जिन चरन ब्रह्मांड भेट्यो, नखसिखौ श्रीभरन॥
जिन चरन प्रभु परखि लीन्हें, तरी गौतम-घरन।
जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोपलीला करन॥
जिन चरन धारयो गोवर्द्धन, गरब मघवा हरन।
दास 'मीरा' लाल गिरधर, अगम तारन तरन॥

———

५

चलो मन गंगा जमुना तीर।
गंगा जमुना निरमल पाणी सीतल होत सरीर।

वंशी बजावत गावत कान्हो संग लियाँ बलबीर ॥
मोर मुकुट पीतांबर सोहै कुंडल झलकत हीर ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल पै सीर ॥

६

मीरा को प्रभु साची दासी बनाओ ।
झूठे धंधों से मेरा फंदा छुड़ाओ ॥
लूटे ही लेत विवेक का डेरा ।
बुधि-बल यदपि करूँ बहुतेरा ॥
हाय राम नहिं कुछ बस मेरा ।
मरत हूँ बिबस, प्रभु धाओ सबेरा ॥
धर्म उपदेश नित प्रति सुनती हूँ ।
मन कुचाल से भी डरती हूँ ॥
सदा साधु सेवा करती हूँ ।
सुमिरण ध्यान में चित धरती हूँ ॥
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ ।
'मीरा' को प्रभु सांची दासी बनाओ ॥

७

स्वामी सब संसार के हो सांचे श्री भगवान।
स्थावर, जंगम, पावक-पाणी धरती बीच समान॥
सब में महिमा तेरी देखी, कुदरत के कुरबान।
सुदामा के दरिद्र खोये, बारे की पहिचान॥
दो मुट्ठी तंदुल की चाबी, दीन्हों द्रव्य महान।
भारत में अर्जुन के आगे, आप भये रथवान॥
उन ने अपने कुल को देखा, छुट गये तीर कमान।
ना कोई मारे, ना कोई मरता, तेरा यह अज्ञान॥
चेतन जीव तो अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान।
मुझ पर तो प्रभु किरपा कीजे, बंदी अपनी जान॥
'मीरा' गिरधर सरण तिहारी लगै चरण में ध्यान॥

८

हेरी मैं तो दरद दिवाणी, मोरा दरद न जाणै कोइ।
घाइल की गति घाइल जाणैं; की जिण लाई होइ।
जौहरि की गति जौहरी जाणैं, की जिन जौहर होइ॥
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवणा किस बिध होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोइ॥

गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विधि मिलणा होइ।
'मीरा' की प्रभु पीर मिटेगी, जब बैद साँवलिया होइ॥

६

मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई॥
जाके सिर मोरमुकुट मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बन्धु आपनो न कोई॥
छाँडि दई कुल की कानि क्या करिहै कोई।
सन्तन ढिग बैठि-बैठि लोक-लाज खोई॥
चुनरी के किये टूक-टूक ओढ लीन्ह लोई।
मोती मूँगे उतार बन-माला पोई॥
अँसुवन जल सींचि-सींचि प्रेमबेल बोई।
अबतो बेलि फैलि गई आनन्द फल होई॥
दूध की मथनियाँ बड़े प्रेम सों बिलोई।
माखन जब काढि लियो छाछ पिये कोई॥
भगति देखि राजी जगत देखि रोई।
दासी 'मीरा' गिरिधर प्रभु तारो अब मोही॥

म्हाँने चाकर राखो जी,गिरधारी लला चाकर राखोजी ॥
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ।
बिन्द्राबन की कुञ्ज गलिन में, तेरी लीला गासूँ॥
चाकरी में दरसण पाऊं, सुमिरण पाऊँ खरची।
भाव-भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी॥
मोर मुकट पीतांबर सोहै, गल बैजन्ती माला।
बिन्द्राबन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला॥
हरे हरे नित बन्न बनाऊँ, बिच बिच राखूँ बारी।
साँवरिया के दरसण पाऊँ, पहिरि कुसुंभी सारी॥
जोगी आया जोग करण कूं, तप करणे सन्यासी।
हरी भजन कूँ साधू आये, ब्रिंदाबन के बासी॥
मीरा के पभु गहिर गम्भीरा, सदा रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दैहैं, प्रेम नदी के तीरा॥

१०

मैं गिरधर रँगराती, सैयाँ मैं गिरधर रँगराती ॥
पँचरँग चोला पहर सखी मैं, झिरमिट खेलन जाती।

ओह झिरमिट माँ मिल्यो साँवरो, खोल मिली तन गाती ॥
जिनका पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजें पाती ।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, न कहुँ आती न जाती ॥
चंदा जायगा सुरज जायगा, जायगी धरण अकासी ।
पवन पाणी दोनुँ ही जायँगे, अटल रहे अविनासी ॥
सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की करले बाती ।
प्रेम हटी का तेल मँगाले, जग रह्या दिन ते राती ॥
सतगुरु मिलिया संसा भाग्या, सैन बताई सांची ।
ना घर मेरा ना घर तेरा, गावै मीरा दासी ॥

———

गोस्वामी तुलसीदास

[जन्म—सं० १५८६ वि० मृत्यु—सं० १६८० वि०]



गोस्वामी तुलसीदास हिन्दीभाषा के सबसे लोकप्रिय कवि हैं। इनका यश न केवल भारत की ही सीमाओं में फैला है बल्कि संसार के अन्य भाषा-भाषियों ने भी इनकी कृतियों का आदर किया है। इनके प्रसिद्ध महाकाव्य रामायण (रामचरित मानस) ने हिन्दुओं की संस्कृति और रामभक्ति को जीवित रखा है। इनकी कविता काव्य की उत्कृष्टता के कारण विद्वानों में मान्य है, साथ ही उसमें भक्ति, ज्ञान, नीति और अध्यात्म की भावनाएँ इतनी सरलता से दी हैं कि अपढ़ भी उन से प्रभावित होते हैं। धार्मिक लोगों में तो ये ऋषि के रूप में पूज्य हैं।

इनका जन्म राजापुर में हुआ था। प्रारम्भ में इन्हें अपनी पत्नी पर बड़ा प्रेम था। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी चैन न मिलती थी।

एक बार वह इनकी अनुपस्थिति में अपने मायके चली गई । जैसे ही ये लौटकर आए पत्नी को न पाकर ससुराल की ओर चल पड़े, और जा कर स्त्री से मिले । इस बात से इनकी पत्नी को बड़ी लज्जा आई और उसने कहा:—

लाज न लागत आपुको, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ ॥
अस्थि चरममय देह मम तामें जैसी प्रीति ।
तैसी जो श्रीराम में होति न तौ भवभीति ॥

बस उसी क्षण इनकी प्रीति स्त्री से हटकर 'राम' की ओर लग गई । ये घर छोड़कर विरक्त हो गए और भक्ति तथा सत्सङ्ग में जीवन बिताने और काव्य-साधना करने लगे ।

इन्होंने रामचरितमानस, कवित्त रामायण, दोहावली, गीतावली, रामाज्ञा, विनयपत्रिका, वरवै रामायण, रामलला नहछू, वैराग्य संदीपनी, कृष्णगीतावली, पार्वती मंगल, रामसतसई, हनुमदबाहुक और जानकी-मंगल पुस्तकें लिखी हैं ।

दोहे

स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास ।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरन कपास ।।

तुलसी मीठे बचन तें, सुख उपजत चहुँ ओर ।
बसीकरन यह मंत्र है, परिहरु बचन कठोर ।।

तुलसी जो कीरति चहहिं, पर कीरति को खोइ ।
तिनके मुँह मसि लागि हैं, मुये न मिटहैं धोइ ।।

हित पुनीत सब स्वारथहिं, अरि असुद्ध बिनु जाइ ।
निज मुख मानिक सम दसन, भूमि परे ते हाड़ ।।

आवत ही हर्षे नहीं, नैनन नहीं सनेह ।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह ।।

सोई ज्ञानी सोई गुनी, जन सोइ दाता ध्यानि ।
तुलसी जाके चित भई, राग द्वेष की हानि ।।

नीच निचाई नहिं तजै, सज्जन हू के संग।
'तुलसी' चन्दन विटप बसि, बिनु विष भये न भुअंग॥

जो मधु मरे, न मारिये, माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ॥

असुभ वेष भूषन धरैं, भच्छ अभच्छ जे खाहिं।
ते जोगी, ते सिद्ध नर, पूजित कलिजुग माहिं॥

सचिव बैद गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर, होइ बेगही नास॥

सात द्वीप नौ खंड लौं, तीन लोक जग माहिं।
तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं॥

अहङ्कार की अगिनि में, दहत सकल संसार।
तुलसी बाँचैं सन्तजन, केवल सांति - अधार॥

उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि, कबहुँ दूसरी ओर॥

चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल।
छीर-नीर-बिबरण समय, बक उघरत तेहि काल॥

ज्ञानी, तापस, सूर, कवि, कोविद गुनआगार।
केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्हि न यहि संसार॥

अवसर कौड़ी जो चुकै, बहुरि दिए का लाख।
दुइज न चन्दा देखिये, उदौ कहा भरि पाख॥

तुलसी अपनो आचरन, भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित, लहसुनहु को बासु॥

ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट पाइ कुजोग सुजोग।
होइ कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग॥

परद्रोही, परदार-रत, परधन, पर-अपवाद।
ते नर पाँवर पापमय, देह धरे मनुजाद॥

जूझे ते भल बूझिबो, भली जीति तें हारि।
डहके ते डहकाइबो, भलो, करिय बिचारि॥

पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै ढेर।
सुमति बिचारे बोलिये, समुझि कुफेर सुफेर॥

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रन पाय रिपु, कायर करहिं प्रलापु।

दीरघ रोगी, दारिदी, कटु बच, लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान तउ होहिं निरादर जोग॥

तुलसी पावस के समय, धरी कोकिलन मौन।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन॥

सेइ साधु गुरु समुझि सिखि, रामभगति थिरताई।
लरिकाई को पैरिबो, तुलसी बिसरि न जाइ॥

नीच गुड़ी ज्यों जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिये गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास॥

पद

१

मन पछितैहै अवसर बीते।

दुरलभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, बचन अरु हीते ॥ १ ॥
सहसबाहु, दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते।
हम-हम करि धन-धाम सँवारे, अन्त चले उठि रीते ॥ २ ॥
सुत-बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबहीते।
अंतहु तोहिं तजैंगे पामर! तू न तजै अबहीते ॥ ३ ॥
अब नाथहिं अनुरागु, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय भोग बहु घीते ॥ ४ ॥

२

मोकहं झूँठहिँ दोस लगावहिं।
मय्या इनहिं बानि पर गृह की नाना युक्ति बनावहिं ॥
इन्ह के लिये खेलिबो छाँड्यो तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि बोरि कर गोरस देन उलहनों आवहिं ॥
कबहुंक बाल रोवाइ पानि गहि मिस यहि करि उठि धावहिं।
करहिं आपु शिर धरहिं आन के बचन बिरंचि हरावहिं ॥
मेरी टेव बूझ हलधर सों संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहिं काहू को ते शिशु मोहि न भावहिं ॥

सुनि सुनि बचन चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं ।
बाल गोपाल केलि कलि कीरति "तुलसिदास" मुनि गावहिं ॥

३

अबहिं उरहनो दै गई बहुरो फिरि आई ।
सुनु मैय्या तेरी सौं करो याकी टेक लरन की सकुच बेचेसि खाई ॥
या ब्रज में लरिका घने हौं ही अन्याई ।
मुँह लाए मूड़हि चढ़ी अन्तहु अहिरिन तोहिं सूधी करि पाई ॥

४

छाड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई ।
ऐहैं देखु कालि तेरे वै ब्याह की बात चलाई ॥
डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि हँसिहैं नई दुलहिआ सुहाई ॥
उबटि नहाहु गुहों चोटिया बलि देखि भलो बर करहिं बड़ाई ॥
मातु कह्यो करि कहत बोलि दै भइ बड़िबार कालि तो न आई ॥
जब सोइबो तात यों हाँ कहि नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई ॥
उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै मुदित महर लखि आतुरताई ॥
बिहँसी ग्वालि जान"तुलसी' प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई ॥

———

वर्षा और शरद वर्णन

लछिमन देखुहु मोर गण, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हर्ष जस, विष्णु भक्ति कहँ देखि ॥१॥

घन घमंड नभ गर्जत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमकि रही घन माहीं। खल कै प्रीति यथा थिर नाहीं ॥
बरसहिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं बुध विद्या पाये ॥
बुंद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे ॥
क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरेहि धन खल बौराई ॥
भूमि परत भा डाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी ॥
सिमिटि २ जल भरहि तलावा। जिमि सद्‌गुण सज्जन पहँ आवा ॥
सरिताजल जलनिधि महँ जाई। होंहिं अचल जिमि जन हरि पाई ॥

हरित भूमि तृण संकुलित, समुझि परै नहीं पंथ।
जिमि पाखंड विवाद तें, गुप्त होंहिं सद्‌ग्रंथ ॥२॥

दादुर ध्वनि चहुँ दिशा सुहाई। वेद पढ़ै जनु बटु समदाई ॥
नव पल्लव भये विटप अनेका। साधक मन जस मिले विवेका ॥
अर्क जवास पात बिनु भयऊ। जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत कतहुं मिलै नहीं धूरी। करइ क्रोध जिमि धर्महिं दूरी ॥
ससि संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कै सम्पति जैसी ॥
निशि तप घन खद्योत विराजा। जनु दम्भिन कर मिला समाजा ॥

महा वृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि स्वतंत्र होइ बिगरहिं नारी ॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥
देखियत चक्रवाक खग नाहीं । कलिहिं पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊसर बरसे तृण नहिं जामा । जिमि हरिजन उर उपज न कामा ॥
बिबिध जंतु संकुल महि भ्राजा । प्रजा बाढ़ जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहं रहे पथिक थकि नाना । जिमि इन्द्रियगण उपजे ज्ञाना ॥

कबहँ प्रबल चल मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कुपूत कुल ऊपजे सम्पति धर्म नसाहिं ॥३॥

कबहुं दिवसमहँ निबिड़ तम, कबहुँक प्रगट पतंग ।
उपजे बिनसइ ज्ञान जिमि, पाइ सुसंग कुसंग ॥४॥

वर्षा विगत शरद ऋतु आई । लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूले कास सकल महि छाई । जनु वर्षा कृत प्रगट बुढ़ाई ॥
उदित अगस्त पंथ जल शोषा । जिमि लोभहिं सोखै संतोषा ॥
सरिता सर निर्मल जल सोहा । संत हृदय जस गत मद मोहा ॥
रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्यागि करहिं जिमि ज्ञानी ॥
जानि शरद ऋतु खंजन आये । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये ॥
पङ्क न रेणु सोह अस धरणी । नीतिनिपुण नृप की जस करणी ॥
जल सङ्कोच बिकल भये मीना । अबुध कुटुम्बी जनु धनहीना ॥
बिनु घन निर्मल सोह अकाशा । हरिजन इव परिहरि सब आशा ॥
कहुँ कहुँ वृष्टि शारदी थोरी । कोउ एकपाव भक्ति जिमि मोरी ॥

चले हर्षि तजि नगर नृप, तापस बणिक भिखारी।
जिमि हरिभक्ति पाइ श्रम, तजहिं आश्रमी चारि॥

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। जिमि हरि शरण न एकौ बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे॥
गुञ्जत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खग रव नाना रूपा॥
चक्रवाक मन दुख निशि पेखी। जिमि दुर्जन पर सम्पति देखी॥
चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न शङ्कर-द्रोही॥
शरदातप निशि शशि अपहरई। संत दरश जिमि पातक टरई॥
देखि इन्दु चकोर समुदाई। चितवहिं हरिजन हरि पाई॥
मशक दंश बीते हिम त्रासा। जिमि द्विजद्रोह किये कुलनासा॥

भूमि जीव संकुल रहे, गये शरद ऋतु पाय।
सद्गुरु मिले जाहिं जिमि, संशय भ्रम समुदाय॥

धनुष-भंग-विवाद

तेहि अवसर सुनि शिवधनुभंगा। आये भृगुकुलकमलपतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौर शरीर भूति भलि भ्राजा। भाल विशाल त्रिपुण्ड बिराजा॥
सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिसिवस कछुक अरुण हुइ आवा॥
भृकुटि कुटिल नयन रिसियाते। सहजहिं चितवत मनहुँ रिसाते॥

वृषभकंध उर बाहु विशाला । चारु जनेउ माल मृगछाला ॥
कटि मुनिबसन तूण दुइ बाँधे । धनु शरकर कुठार कल काँधे ॥

संतवेष करनी कठिन, बरनि न जाइ स्वरूप ।
धरि मुनितनु जनु वीररस, आयउ जहँ सब भूप ॥

देखत भृगुपति वेष कराला । उठे सकल भयबिकल भुआला ॥
पितुसमेत कहि कहि निजनामा । लगे करन सब दंड प्रनामा ॥
जेहिसुभाव चितवहिं हितजानी । सो जानै जनु आयु खुटानी ॥
जनक बहोरि आइ सिर नावा । सीय बुलाइ प्रणाम करावा ॥
आसिस दीन्ह सखी हरषानी । निज समाज लै गई सयानी ॥
विश्वामित्र मिले पुनि आई । पदसरोज मेले दोउ भाई ॥
राम लषण दशरथ के ढोटा । दीन्ह असीस जानि भल जोटा ॥
रामहिं चितय रहे थकि लोचन । रूप अपार माररूदमोचन ॥

बहुरि विलोकि विदेहसन, कहहु कहा अतिभीर ।
पूछत जान अजान जिमि, व्यापेउ कोप शरीर ॥

समाचार कहि जनक सुनाए । जेहि कारण महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे । देखे चापखंड महि डारे ॥
अति रिस बोले बचन कठोरा । कहुजड़ जनक धनुष केहि तोरा ॥
वेगु देखाउ मूढ़ नतु आजू । उलटौं महि जहँ लगि तव राजू ॥
अति डर उतर देत नृप नाहीं । कुटिल भूप हरषे मनमाहीं ॥
सुर मुनि नाग नगरनरनारी । सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥
मन पछतात सीय महतारी । विधि सँवारि सब बात बिगारी ॥
भृगुपतिकर सुभाव सुनु सीता । अर्धनिमेष कलपसम बीता ॥

सभय बिलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरष विषाद कछु, बोले श्रीरघुबीर॥

नाथ शंभुधनुभंजनिहारा। होइहि कोउ इक दास तुम्हारा॥
आएसु कहा कहिय किन मोही। सुनि रिसाय बोले मुनि कोही॥
सेवक सो जो करै सेवकाई। अरिकरनी करि करिय लराई॥
सुनहु राम जेहि शिवधनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥
सो बिलगाइ बिहाइ समाजा। नतु मारे जैहैं सब राजा॥
सुनि मुनिवचन लषन मुसुकाने। बोले परशुधरहिं अपमाने॥
बहु धनुहीं तोरेउँ लरकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्ह गुसाईं॥
इहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाय कह भृगुकुल केतू॥

रे नृपबालक कालबस, बोलत तोहिं न सँभार।
धनुहिसम त्रिपुरारिधनु, विदित सकल संसार॥

लषन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष समाना॥
का छति लाभ जीर्ण धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे॥
छुवत टूट रघुपतिहिं न दोषू। मुनि बिनु काज करिय कत रोषू॥
बोले चितइ परशु की ओरा। रे शठ सुनेसि सुभाउ न मोरा॥
बालक बोलि बधौं नहिं तोहीं। केवल मुनि जड़ जानसि मोहीं॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। विश्वविदित छत्रीकुलद्रोही॥
भुजबल भूमि भूपबिनु कीन्हीं। बिपुलबार महिदेवन दीन्हीं॥
सहसबाहु भुज छेदन हारा। परशु बिलोकु महीपकुमारा॥

मातुपितुहिं जनि सोचबस, करसि महीपकिशोर।
गर्भन के अर्भकदलन, परशु मोर अति घोर॥

बिहँसि लषन बोले मृदु बानी। अहो मुनीस महाभटमानी॥
पुनि पुनि मोहिं देखाव कुठारा। चहत उडावन फूँकि पहारा॥
इहाँ कुम्हड़-बतिया कोउ नाहीं। जो तर्जनि देखत डरि जाहीं॥
देखि कुठार सरासन बाना। मैं कछु कहा सहित अभिमाना॥
भृगुकुल समुझि जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहौं रिस रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥
बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहू पाँ परिय तुम्हारे॥
कोटिकुलिससम वचन तुम्हारा। वृथा धरहु धनु बान कुठारा॥

जो बिलोकि अनुचित कहेऊँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबंसमणि, बोले गिरा गंभीर॥

कौशिक सुनहु मन्द यह बालक। कुटिल कालबस निजकुलघालक
भानु वंश राकेश कलंकू। निपट निरंकुश अबुध असंकू॥
काल कवल होइहि छिनमाहीं। कहौ पुकारि खोरि मोहि नाहीं॥
तुम हटकहु जो चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा॥
लषन कहेउ मुनि सुजस तुम्हारा। तुमहिं अछत को बरनै पारा॥
अपने मुख तुम आपनि करनी। बार अनेक भांति बहु बरनी॥
नहिं संतोष तो पुनि कछु कहहू। जनिरिसरोकि दुसहदुखसहहू॥
वीरवृत्ति तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहू सोभा॥

सूर समरकरनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
विद्यमान रण पाइ रिपु, कायर कथहिं प्रलापु।

तुम तो काल हाँकि जनु लावा। बार बार मोहिं लागि बुलावा॥
सुनत लषन के बचन कठोरा। परशु सुधारि धरेउ कर घोरा॥

अब जनि देइ दोष मोहिं लोगू। कटुबादी बालक बधयोगू ॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा। अब यह मरनहार भा साँचा ॥
कौशिक कहा क्षमिय अपराधू। बालदोष गुन गनहिं न साधु ॥
कर कुठार मैं अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही ॥
उतर देत छाँडौं बिनु मारे। केवल कौशिक शील तुम्हारे ॥
नतु यहि काटि कुठार कठोरे। गुरुहिं उऋण होतेउँ श्रम थोरे ॥

गाधिसुअन कह हृदय हँसि, मुनिहिं हरि अरे सूझि।
अजगव खंडेउ ऊख जिमि, अजहुँ न बूझ अबूझ ॥

कहेउ लषन मुनि शील तुम्हारा। को नहिं जान विदित संसारा ॥
मातुहि पितुहि उऋण भये नीके। गुरुऋण रहा सोच बड़ जीके ॥
सो जनु हमरेहि माथे काढ़ा। दिन चलि गए ब्याज बहु बाढ़ा ॥
अब आनिय व्यवहरिया बोली। तुरत देव हैं थैली खोली ॥
सुनि कटुवचन कुठार सुधारा। हा हा कहि सब लोग पुकारा ॥
भृगुवर परशु दिखावहु मोही। विप्र विचारि बचौं नृपद्रोही ॥
मिले न कबहुँ सुभट रणगाढ़े। द्विज देवता घरहिके बाढ़े ॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सेनहिं लषन निवारे ॥

लषन उतर आहुति सरिस, भृगुपति कोप कृसानु।
बढ़त देखि, जलसम वचन, बोले रघुकुलभानु ॥

नाथ करहु बालक पर छोहू। शुद्धदूधमुख करिय न कोहू ॥
जो पै प्रभुप्रभाव कछु जाना। तौकि बराबर करत अयाना ॥
जो लरिका कछु अनुचित करहीं। गुरु पित मातु मोद मन भरहीं ॥
करिय कृपा सिसु सेवक जानी। तुम सम सील धीर मुनि ज्ञानी ॥

रामवचन सुनि कछुक जुड़ाने। कहि कछु लषन बहुरि मुसकाने ॥
हँसत देखि नखशिख रिसि व्यापी। राम तोर भ्रात बड़ पापी ॥
गौर सरीर स्याम मन मांहीं। कालकूटमुख पयमुख नाहीं ॥
सहज टेढ़ अनुहरै न तोही। नीच मीचुसम लखै न मोही ॥

लषन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोध पापकर मूल।
जेहिबस जन अनुचित करहिं, चरहिं विश्वप्रतिकूल ॥

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया। परिहरि कोप करिय अब दाया ॥
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने। बैठिय होइहिं पाँय पिराने ॥
जो अति प्रिय तौ करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुनी बुलाई ॥
बोलत लषनहिं जनक डराहीं। मष्टकरहु अनुचित भल नाहीं ॥
थर थर काँपहिं पुरनरनारी। छोट कुमार खोट अति भारी।
भृगुपति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिसतनु जरै होइ बलहानी ॥
बोले रामहिं देइ निहोरा। बचौं बिचारि बंधु लघु तोरा ॥
मन मलीन तनु सुंदर कैसे। बिषरस भरा कनकघट जैसे ॥

सुनि लक्ष्मण बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुरुसमीप गवने सकुचि, परिहरि बानी वाम ॥

अति विनीत मृदु शीतल बानी। बोले राम जोरि जुगपानी ॥
सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। बालकवचन करिय नहिं काना ॥
बररे बालक एक सुभाऊ। इनहिं न संत विदूषहिं काऊ ॥
तिन्ह नाहीं कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥
कृपा कोप बध बँध गुसाँई। मोपर करिय दास की नाँई ॥

कहिय बेगि जेहि विधि रिस जाई। मुनिनायक सोइ करिय उपाई॥
कह मुनि राम जाइ रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
यहिके कंठ कुठार न दीन्हा। तो मैं कहा कोप करि कीन्हा॥

गर्भ स्रवहिं अवनिपरमनि, सुनि कुठारगति घोर।
परशु अछत देखौं जियत, बैरी भूप किसोर॥

बहै न हाथ दहै रिस छाती। भा कुठार कुंठित नृपघाती॥
भयउ वामविधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदय कृपा कस काऊ॥
आजु दैव दुख दुसह सहावा। सुनिसौमित्रिबिहँसिसिरनावा॥
नाथ कृपामूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला॥
जोपै कृपा जरै मुनि गाता। क्रोध भये तनु राख विधाता॥
देख जनक हठ बालक एहू। कीन्ह चहत जड़ यमपुर गेहू॥
बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृपढोटा॥
बिहँसे लषन कहा मुनि पाहीं। मूँदिय आँखि कतहुँ कोउ नाहीं॥

परशुराम तब राम प्रति, बोले बचन सक्रोध।
शंभुसरासन तोड़ि शठ, करसि हमार प्रबोध॥

बंधु कहै कटु संमत तोरे। तू छल बिनय करसि कर जोरे॥
करु परितोष मोर संग्रामा। नाहित छाँड़ु कहाउब रामा॥
छलतजि करहु समर शिवद्रोही। बंधुसहित नतु मारौं तोही॥
भृगुपति कहहिं कुठार उठाए। मन मुसुकाहिं राम सिर नाए॥
गुनहु लषनकर हम पर रोषू। कतहुँ सुधाइहुते बड़ दोषू॥
टेढ जानि शंका सब काहू। वक्र चंद्रमहिं ग्रसै न राहू॥

रामकहेउ रिसि तजिय मुनीसा। कर कुठार आगे यह सीसा॥
जेहि रिसिजाइ करियसोइ स्वामी। मोहिं जानि आपन अनुगामी॥

प्रभुसेवकहि समर कस, तजहु विप्रवर रोष।
वेष विलोकि कहेसि कछु, बालकहूं नहिं दोष॥

देखि कुठार बाण धनुधारी। भइ लरिकहि रिसवीर बिचारी॥
नाम जान पै तुमहिं न चीन्हा। वंशसुभाव उतर तेहि दीन्हा॥
जो तुम अवतेहु मुनि की नाँई। पदरज शिर सिसु धरत गुसाँई॥
क्षमहु चूक अनजानत केरी। चहिय विप्रउर कृपा घनेरी।
हमहिंतुमहिं सरवरि कस नाथा। कहहु तु कहाँ चरण कहँ माथा॥
राममात्र लघु नाम हमारा। परशुसहित बड़ नाम तुम्हारा॥
देव एकगुण धनुष हमारे। नवगुण परम पुनीत तुम्हारे।
सब प्रकार हम तुमसन हारे। क्षमहु विप्र अपराध हमारे।

बारबार मुनि बिप्रवर, कहा रामसन राम।
बोले भृगुपति सरुष हुइ, तुहू बंधुसम बाम।

निपटहिंद्विजकरि जानेउ मोहीं। मैं जस विप्र सुनाऊँ तोहीं॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृशानू॥
समिध सेन चतुरंग सुहाई। महामहीप भए पशु आई॥
मैं यहि परशु काटि बलि दीन्हा। समरयज्ञ जग कोटिन कीन्हा॥
मोर प्रभाव विदित नहिं तोरे। बोलेसि निदरि विप्र के भोरे॥
भंजेउ चाप दाप बड़ बाढ़ा। अहमितिमनहुँजीति जग ठाढ़ा॥

राम कहा मुनि कहहु विचारि। रिसअतिबड़ि लघुचूक हमारी ॥
छुवतहिं टूट पिनाक पुराना। मैं केहि हेतु करौं अभिमाना ॥

जो हम निदरहिं विप्रवर, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ असको जगसुभट जिहिं, भयवश नावहिं माथ ॥

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होउ बलवाना ॥
जो रण हमहिं प्रचारे कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ ॥
क्षत्रियतनु धरि समरसकाना। कुलकलङ्क तेहि पामर जाना ॥
कहौं स्वभाव न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रण रघुवंसी ॥
विप्रबंस की अस प्रभुताई। अभय होइ जो तुमहिं डराई ॥
सुनि मृदु वचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परशुधरमति के ॥
राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मोर मिटै संदेहू ॥
देत चाप आपहिं चढ़ि गयऊ। परशुराम मन बिस्मय भयऊ ॥

जाना राम प्रभाव तब, पुलकि प्रफुल्लित गात।
जोरि पाणि बोले बचन, प्रेम न हृदय समात ॥

नरोत्तमदास

[जन्म--सम्वत् १५५०, मृत्यु—सम्वत् १६०२]

नरोत्तमदास जी ब्रजभाषा के श्रेष्ठ कवियों में से हैं । इनके काव्य में जीवन की कोमल भावनाओं का सूक्ष्म वर्णन मिलता है । अधिकांश ब्रजभाषा के कवि जहाँ नख-शिख और नायक-नायिका भेद वर्णन या अलङ्कार-निरूपण में लगे रहे वहा इन्होंने मानवहृदय की दूसरी भावनाओं को छूने का साहस किया ।

इनका कृष्ण-सुदामा काव्य बहुत सुन्दर बन पड़ा है । गरीब मित्र सुदामा से वैभवसम्पन्न कृष्ण किस तरह प्रेम करते हैं—आदर्श मित्रता का उदाहरण उपस्थित करते हैं—यही इस पुस्तक में कवि ने बताया है । वर्णन इतना स्वाभाविक है—इतना करुण है कि पत्थर हृदय भी पिघल जावे । पाठक इनके काव्य में पाण्डित्य चाहे न पावें लेकिन स्वाभाविकता, प्रसादगुण और प्रवाह तो पाते ही हैं ।

इन्होंने सुदामाचरित्र और ध्रुवचरित्र दो पुस्तकें लिखी हैं—जिनमें से सुदामाचरित्र ही उपलब्ध है।

इनका जन्म सम्वत् १५५० में हुआ था और 'शिवसिंह सरोज' में लिखा है कि सम्वत् १६०२ तक ये जीवित थे। मृत्यु की निश्चित तिथि का अभी तक कोई निर्णय न हो सका।

सुदामा-चरित्र

स्त्री—

लोचन कमल, दुखमोचन, तिलक भाल,
श्रवणन कुण्डल, मुकुट धरे माथ हैं।
ओढ़े पीत वसन, गले में वैजयन्ती माला,
शंख चक्र पद्म और गदा लिये हाथ हैं।
कहत नरोत्तम सँदीपन गुरु के पास,
तुम ही कहत हम पढ़े एक साथ हैं।
द्वारिका गये ते हरि दारिद हरेंगे पिय!
द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं।

सुदामा—

शिक्षक हैं सिगरे जग को तिय! ताको कहा अब देत है सिच्छा
जे तप कै परलोक सुधारत, संपति की तिनके नहिं इच्छा

मेरे हिय हरि को पदपङ्कज, बार हजार लै देख परिच्छा।
औरन को धन चाहिए बावरि! ब्राह्मण को धन केवल भिच्छा॥

स्त्री—

दानी बड़े तिहुँ लोकन में जग जीवत नाम सदा जिनको लै।
दीनन की सुधि लेत भली बिधि,सिद्ध करो पिय! मेरो मतो लै॥
दीनदयालु के द्वार न जात सो, और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै।
श्रीयदुनाथ से जाके हितू सो, तिहूँ पन क्यों कन माँगत डोलै?

सुदामा—

छत्रिन के प्रण युद्ध ज्यों बादल, साजि चढ़े गज बाजिन हीं।
वैश्य को बानिज और कृषीपन, शूद्र के सेवन नीति यही॥
बिप्रन के प्रण है जु यहाँ, सुख संपति सों कछु काज नहीं।
कै पढिबो कै तपोधन है, कन मांगत ब्राह्मणै लाज नहीं॥

स्त्री—

कोदों सवाँ जुरतौ भरि पेट, न चाहती हौं दधि दूध मिठौती।
सीत व्यतीत भयो सिसिआतहि, हौं हठती पै तुम्हें न हठौती॥
जो जनती न हितू हरि से तो मैं काहे को द्वारिका ठेल पठौती।
या घर से कबहूँ न गयो पिय! टूटो तवा अरु फूटी कठौती॥

सुदामा—

छाँडि सबै झक तोहि लगी बक, आठहुँ याम यही ठक ठानी।
जातहिं देहैं लदाय लढा भरि, लैहौं लदाय यही जिय जानी॥

पै ये अटारी अटा कहँ ते, जिनको विधि दीनी है टूटीसी छानी ॥
जो पै दरिद्र ललाट लिख्यो, तो पै काहु के मेटे न जात अजानी ॥

स्त्री—

फाटे पट टूटि छानि, खायो भीख माँगि आनि,
बिना गये बिमुख रहत देव पित्रई।
वे हैं दीनबन्धु, दुखी देख के दयालु ह्वै हैं,
देहैं कछु भलो, सो हौं जानत अगत्रई।
द्वारिका लौं जात प्रिय! केतौ अलसात तुम,
काहे को लजात, भई कौनसी विचित्रई।
जो पै सब जन्म ये दरिद्र ही सताये तो पै,
कौन काज आय है कृपानिधि की मित्रई?

सुदामा—

तैं तो कही नीकी, सुन बात हित ही की यह,
रीति मित्रई की नित प्रीति सरसाइये।
चित्त के मिले ते बित्त चाहिए परसपर,
मित्र के जो जेंइए तो आपहू जिमाइए।
वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप,
तहाँ यह रूप जाय कहा सकुचाइए।
दुख-सुख सब दिन काटे ही बनैगो, भूल,
विपति परे पै द्वार मित्र के न जाइए॥

स्त्री—

विप्र के भगत हरि जगत-विदित बन्धु,
लेत सब ही की सुधि ऐसे महादानी हैं।
पढ़े एक चटसार, कहा तुम कैयो बार,
लोचन अपार वे तुम्हें न पहिचानि हैं?
एक दीनबन्धु कृपासिन्धु फेर गुरुबन्धु,
तुम सम कौन दीन जाको जिय जानि है?
नाम लेत चौगुनी, गये ते द्वार सौगुनी,
विलोकत सहसगुनी प्रीति प्रभु मानि हैं॥

सुदामा—

द्वारिका जाहु जू, द्वारिका जाहु जू, आठहु याम यही झक तेरे।
जौ न कहौ करिये तौ बड़ो दुख, पैहौं कहाँ अपनी गति हेरे॥
द्वार खड़े प्रभु के छँड़िया तहँ, भूपति जान न पावत नेरे।
पान सुपारि तौ देखु विचारिके, भेंट को चारि न चाँवर मेरे॥

यह सुनिके तब ब्राह्मणी, गई परोसिन पास।
सेर पाव चाँवर लिये, आई सहित हुलास॥
सिद्धि करी गणपति सुमिर, बाँधि दुपटिया खूँट।
माँगत खात चले तहाँ, मारग बाली बूँट॥

द्वारिका वर्णन

मंगलसंगीत धाम धाम में पुनीत जहाँ,
नाचें वारवधू देवनारि-अनुहारिका।

घंटन के नाद कहूँ बाजन के छाय रहे,
कहूं कीर केकी पढ़ें सुक और सारिका।
रतनन ठाठ हाट-बाटन में देखियत,
घूमें गज अश्व रथ पत्ति नर नारिका।
दशों दिशि भीर, द्विज धरत न धीर मन,
उठत है पीर लखि बलबीर द्वारिका॥
दृष्टि चकचौंधि गई देखत सुबर्नमयो,
एक ते सरस एक द्वारिका के भौन हैं।
पूछे बिन कोऊ काहू से न करे बात जहाँ,
देवता से बैठे सब साधि साधि मौन हैं।
देखत सुदामा धाय पुरजन गहे पाय,
'कृपा करि कहो, कहाँ कीने विप्र! गोन हैं?'
'धीरज अधीर के, हरण पर पीर के,
बताओ, बलबीर के महल यहां कौन हैं?'
द्वारपाल चलि तहँ गयो, जहाँ कृष्ण यदुराय।
हाथ जोरि ठाढ़ो भयो, बोल्यो शीश नवाय॥

द्वारपाल—

शीश पगा न झगा तन पै, प्रभु जाने को आहि बसे किहि ग्रामा।
धोती फटी सी, लटी दुपटी, अरु पाँय उपानह को नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि, रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा।
दीनदयालु को पूँछत नाम, बतावत आपनो नाम सुदामा॥

लोचन पूरि रहे जल सों, प्रभु दूर ते देखत ही दुख मेट्यो।
सोच भयो सुरनायक के, कल्पद्रुम के हिय मांझ खखेट्यो ॥
कांपि कुबेर हिये सर से पग, जात सुमेरहु रङ्क समेट्यो।
राज भयो तब ही जब ही, भरि अङ्क रमापति सों द्विज भेट्यो ॥

श्रीकृष्णव्यथावर्णन

ऐसे बिहाल बिवाइन सों भये, कंटकजाल लगे पुनि जोये।
हाय महादुख पायो सखा ! तुम, आये इतै न कितै दिन खोये ॥
देखि सुदामा की दीन दसा, करुणा करिकै करुणानिधि रोये।
पानी परात को हाथ छुओ नहिं, नैनन के जल सों पग धोये ॥

तन्दुल प्रिय दीने हुते, आगे धरियो जाय ॥
देखि राजसंपति विभव, दे नहीं सकत लजाय ॥
अन्तरयामी आप हरि, जानि भक्ति की रीति।
सुहृद सुदामा विप्र सों, प्रगट जनाई प्रीति ॥

श्रीकृष्ण –

कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत ?
चाँपि गाँठरी काँख में, रहे कहो किहि हेत ?

आगे चना गुरुमात दिये, ते लिये तुम चाबि हमें नहिं दीने।
श्याम कही मुसकाय सुदामा सों, चोरि कि बानि में हौ जु प्रवीने ॥
गाँठरि काँख में चाँपि रहे तुम, खोलत नहीं सुधारस भीने।
पाछिली बान अजौ न तजी तुम, वैसे ही भाभी के तन्दुल कीने ॥

खोलत सकुचत गाँठरी, चितवत हरि की ओर ।
जीरण पट फट छुटि परे, बिखरि गये तिहि ठौर ॥

तन्दुल माँगत मोहन, विप्र सङ्कोच ते देत नहीं अभिलाखे ।
है नहिं पास कछु कहिके, तेहि गोपि घनी विधि काँख में राखे ॥
सो लखि दीनदयाल उतै यह चोरि करी तुम यों हँसि भाखे ।
खोलिके पोट अछोट मुठी गिरिधारन चाउर चाव सों चाखे ॥

रहीम

[जन्म—सम्वत् १६१०, मृत्यु—सम्वत् १६८२]

रहीम हिंदीभाषा के उन मुसलमान कवियों में से हैं जिनपर हिंदी-भाषा को सदा अभिमान रहेगा। इनका पूरा नाम अब्दुलरहीम खानखाना था।

ये प्रसिद्ध मुगल सम्राट अकबर के समय में साम्राज्य के उच्चतम पदाधिकारियों में से एक थे। ये अकबर बादशाह के बचपन के संरक्षक बहरामखां के पुत्र थे। सम्राट इनका बहुत मान करते थे।

मनुष्यता की दृष्टि से भी ये बहुत ऊंचे थे—दयालु, स्नेही, दानी और उदार! अरबी, फारसी, संस्कृत और हिन्दीभाषा के बड़े विद्वान थे। विद्वानों का मान भी ये बहुत करते थे। एक बार गङ्ग कवि को इन्होंने ३६ लाख रुपया इनाम दे छोड़ा था। इनके समय के प्रायः सभी हिन्दी के कवियों की इन्होंने किसी न किसी रूप में सेवा और सहायता की।

ऊंचे साहित्यिक और कवि होते हुए भी ये बड़े योद्धा थे। अकबर बादशाह के काल में इन्होंने अनेक युद्धों में सेनापति के रूप में अपनी वीरता का सिक्का जमाया और सफलता पा कर सम्राट से जागीरें पाईं।

ये इतने दानी थे कि साल में एक बार सारी सम्पत्ति दान कर देते थे। जीवन के अंतिम दिनों में इन्हें बड़े कष्ट सहने पड़े—कहते हैं कि एक भड़भूंजे के यहां भाड़ झोंकने की नौकरी इन्हें करनी पड़ी।

इन्हें जीवन का बहुत गहरा अनुभव प्राप्त था। इसीलिए इनके दोहों में बहुत ही मार्मिक और तत्व की बातें मिलती हैं। इनके नीति के दोहों को कोई नहीं पा सका है।

इन्होंने रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, रासपञ्चाध्यायी, शृङ्गार-सोरठ, मदनाष्टक, दीवान फारसी और वाकयात बाबरी का फारसी अनुवाद तथा कौतुक जातकम ग्रन्थ लिखे हैं।

दोहे

अनकीन्हीं बातें करै, सोवत जागै जोय।
ताहि सिखाय जगायबो, रहिमन उचित न होय॥ १॥

अमरबेलि बिनु मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि खोजत फिरिए काहि॥ २॥

उरग, तुरँग, नारी, नृपति, नीच जाति, हथिआर।
रहिमन इन्हें सँभारिए, पलटत लगै न बार॥ ३॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
रहिमन मूलहि सींचिबो, फूलहि फलहि अघाय॥ ४॥

अंतर दाव लगी रहै, धुँआ न प्रगटै सोय।
कै जिय जानो आपनो, जा सिर बीती होय॥ ५॥

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वांति एक गुण तीन।
जैसी संगति बैठिये, तैसोई फल दीन॥ ६॥

कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
बिपति-कसौटी जे कसे, सोही साँचे मीत॥ ७॥

कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग॥ ८॥

कैसे निबहै निबल जन, करि सबलन सो गैर।
रहिमन बसि सागर बिषे, करत मगर सों बैर॥ ९॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गए रहीम॥१०॥

खीरा सीर तें काटिए, मलियत नमक बनाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहिअत इहै सजाय॥११॥

खैर, खून, खांसो, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान॥१२॥

गरज आपनी आप सों, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलबधू पर-घर जात लजाय॥१३॥

छिमा बड़न को चाहिए, छोटिन के उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥१४॥

जिहिं अंचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र शत्रु ह्वै जात॥१५॥

जिहि रहीम तन मन लियो, कियो हिए बिच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन॥१६॥

जैसी परै सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम औ मेह ॥१७॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥१८॥

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहुँ किन जाहि।
जल में जो छाया परे, काया भीजति नाहिं ॥१९॥

टूटे सुजन मनाइए, जौ टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि फिरि पोइए, टूटे मुक्ताहार ॥२०॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम पर काज हित, संपति सँचहि सुजान ॥२१॥

थोथे बादर क्वार के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करें पाछिली बात ॥२२॥

धन थोरो इज्जत बड़ी, कहि रहीम का बात।
जैसे कुल की कुलबधू, चिथड़न मांहि समात ॥२३॥

धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पिआसो जाय ॥२४॥

नात नेह दूरी भली, लो रहीम जिय जानि।
निकट निरादर होत है, ज्यों गड़ही को पानि ॥२५॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु ते अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥२६॥

प्रीतम छवि नैनन बसो, पर छवि कहां समाय।
भरी सराय रहीम लखि, पथिक आप फिरि जाय ॥२७॥

बड़े पेट के भरन को, है रहीम दुख बाढ़ि।
याते हाथिहिं हहरि कै, दिये दांत द्वै काढ़ि ॥२८॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बढ़ो न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहे, लाख टका मेरो मोल ॥२९॥

मान सहित विष खाय के, संभु भए जगदीस।
बिना मान अमृत पिए, राहु कटायो सीस ॥३०॥

यह न रहीम सराहिए, देन लेन को प्रीत।
प्रानन बाजी राखिए, हारि होय कै जीत ॥३१॥

यह रहीम निज संग लै, जनमत जगत न कोय।
बैर, प्रीत, अभ्यास, जस, होत होतही होय ॥३२॥

यों रहीम गति बड़न की, ज्यों तुरंग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥३३॥

रहिमन अपने पेट सों, बहुत कह्यो समुझाय।
जो तू अनखाए रहे, तोसों को अनखाय ॥३४॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भली ना प्रीति।
काटे चाटै स्वान के, दोउ भांति विपरीत ॥३५॥

रहिमन कठिन चितान ते, चिंता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिंता जीव समेत ॥३६॥

रहिमन कहत सु पेट सों, क्यों न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करै, भरे बिगारत दीठ ॥३७॥

रहिमन घरिया रहँट की, त्यों ओछे की डीठ।
रीतिहि सन्मुख होत है, भरी दिखावै पीठ ॥३८॥

रहिमन चाक कुम्हार को, माँगे दिया न देइ।
छेद में डंडा डारि कै, चहै नाँद लै लेइ ॥३९॥

रहिमन चुप ह्वै बैठिए, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं, बनत न लगिहै देर ॥४०॥

रहिमन तब लगि ठहरिए, दान मान सनमान।
घटत मान देखिय जबहिं, तुरतहि करिय पयान ॥४ ॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहचानि।
पर बस परे, परोस बस, परे मामिला जानि ॥४२॥

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ॥४३॥

रहिमन धागा प्रेम का, मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे सो फिरि ना मिले, मिले गाँठ पड़ जाय ॥४४॥

रहिमन निज मन की विथा, मनही राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बांटि न लैहै कोय ॥४५॥

रहिमन निज सम्पति बिना, कोउ न विपति सहाय।
बिनु पानी क्यों जलज को, नहिं रवि सकै बचाय ॥४६॥

रहिमन नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारी कर गहे, मद समुझै सब ताहि ॥४७॥

रहिमन पानी राखिए, बिनु पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरे, मोती, मानुष, चून ॥४८॥

रहिमन प्रीति न कीजिए, जस खीरा ने कीन।
ऊपर से तो दिल मिला, भीतर फाँकें तीन ॥४८॥

रहिमन यह तन सूप है, लीजै जगत पछोर।
हलुकन को उड़िजान दै, गरुए राखि बटोर ॥४६॥

रहिमन यों सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री अँखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥५०॥

रहिमन राज सराहिए, ससि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय ॥५१॥

बिहारी



बिहारी लाल व्रजभाषा के कवियों में अपने ढंग के अनूठे कवि हुए हैं। गागर में सागर भर देना इन्होंने जाना है। छोटे-छोटे दोहों में ये इतने भाव भर देते थे कि दूसरे कवि बहुत विस्तार से लिखकर भी उन्हें नहीं पाते।

इनकी भावनाएं भाषा और काव्य–चमत्कार तीनों चीजें उत्कृष्ट हैं। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक बिहारी–सतसई की अभी तक अनेक टीकाएँ हो चुकी हैं—और बराबर होती चली जा रही हैं। पंडित पद्मसिंह शर्मा को इनकी सतसई की टीका पर १२००) का मंगला प्रसाद पुरस्कार दिया गया—इसीसे इस कवि की प्रतिभा का अंदाज़ लगाया जा सकता है।

ये जयपुर के महाराजा जयसिंह के यहां रहते थे। इन्हें प्रत्येक दोहे पर एक मोहर पुरस्कार मिलता था।

श्रृंगार-रस के वर्णन में बिहारी लाल से कोई बाजी न ले सका। प्रत्येक दोहे ने एक सुंदर तस्वीर सी खींच दी है। तस्वीर ही नहीं खींचदी—रस की वर्षा करदी है।

ये ककोर कुल के चौबे ब्राह्मण थे और ग्वालियर के पास गोविंद-पुर में इनका जन्म हुआ था।

दोहे

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परै, स्याम हरित द्युति होय॥

सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
इहि बानिक मो मन बसौ, सदा बिहारीलाल॥

मोहन मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ।
बसति सुचित अन्तर तऊ, प्रति-बिम्बित जग होइ॥

तजि तीरथ हरि-राधिका, तन द्युति करि अनुराग।
जिहिं ब्रज-केलि निकुञ्ज मग, पग पग होत प्रयाग॥

सघन कुञ्ज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥

सखि सोहति गोपाल के, उर गुञ्जन की माल।
बाहर लसति मनो पिये, दावानल की ज्वाल।

जहां जहां ठाढ़ौ लख्यौ, स्याम सुभग सिरमौर।
उनहूँ बिन छनि गहि रहत,दृगनि अजहुँ वह ठौर।।

सोहत ओढ़े पीतपट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि सैल पर, आतप पर्यो प्रभात।।

अधर धरत हरि के परत, ओठ डीठि पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष सी होति।।

कीने हू कोटिक जतन, अब कहि काढ़ै कौन।
मो मन मोहन रूप मिलि, पानी में को लोन।।

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै श्याम रँग, त्यों त्यों उज्जल होय।।

इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं।।

गिरि ते ऊंचे रसिक मन, बूड़े जहां हजार।
वहै सदा पसु नरन कहँ, प्रेम पयोधि पगार।।

जात जात बित होत है, ज्यों जिय में सन्तोष।
होत होत त्यों होय तौ, होय घरी में मोष।।

चटत न छांडत घटतहू, सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न बरु फटै, रँग्यो चोल रँग चीर।।

न ये बिससिये लखि नये, दुर्जन दुसह सुभाय।
आंटे परि प्रानन हरैं, कांटे लौं लगि पाय।।

नीच हिये हुलसो रहै, गहे गेंद को पोत।
ज्यों ज्यों माथे मारिये, त्यों त्यों ऊंचो होत॥

कबौं न ओछे नरन सों, सरत बड़ेन को काम।
मढ़ो दमामो जात कहुँ, कहि चूहे के चाम॥

कोरि जतन कोऊ करो, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊंचो चढ़ै, तऊ नीच को नीच॥

लटुवा लौं प्रभु कर गहै, निगुनी गुन लपटाय।
वहै गुनी कर ते छुटे, निगुनीयै है जाय॥

बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जप दान॥

कहैं इहै सब श्रुति सुमृति, इहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसक ही, पातक, राजा, रोग॥

बड़े न हूजो गुनन बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय॥

गुनी गुनी सब कोउ कहै, निगुनी गुनी न होत।
सुन्यो कहूँ तरु अर्क ते, अर्क समान उदोत॥

सङ्गति सुमति न पावहीं, परे कुमति के धन्ध।
राखौ मेलि कपूर में, हींग न होत सुगन्ध॥

नर की अरु नलनीर की, गति एकै करि जोइ।
जेतो नीचो ह्वै चलै, ते तो ऊंचो होइ॥

बढ़त बढ़त संपति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत सु न फिर घटै, बरु समूल कुंभिलाय॥

जो चाहौ चटक न घटै, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त॥

अति अगाध अति औथरे, नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहां, जाकी प्यास बुझाय॥

मीत न नीति गलीति ह्वै, जो धन धरिये जोरि।
खाये खरचे जो बचै, तो जोरिये करोरि॥

कनक कनक तें सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
वा खाये बौरात है, या पाये बौराय॥

बुरो बुराई जो तजै, तो चित खरो सकात।
ज्यों निकलङ्क मयङ्क लखि, गनैं लोग उतपात॥

जिन दिन देखे वे सुमन, गई सु बीत बहार।
अब अलि रही गुलाब की, अपत कँटीली डार॥

इहि आसा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ह्वै हैं बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल॥

अरे हंस या नगर में, जैयो आप विचारि।
कागनि सों जिन प्रीति करि, कोकिल दई विडारि॥

को छूट्यो यहि जाल परि, कत कुरङ्ग अकुलात।
ज्यों ज्यों सुरझि भज्यो चहत, त्यों त्यों उरझत जात॥

जाके एकौ एकहू, जग व्यवसाय न कोय।
सो निदाघ फूलै फलै, आक डहडहो होय॥

नहिं पावस ऋतुराज यह, सुनि तरवर मन भूल।
अपत भये बिनु पाइहैं, क्यों नव दल फल फूल॥

करि फुलैल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गन्धी मति अन्ध तू, अतर दिखावत काहि॥

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन कांचै नाचै बृथा, साँचै राँचै राम॥

केशव दास

(जन्म-संवत १६१२—मृत्यु १६७४)



केशव दास जी रीति-काल के प्रसिद्धतम कवियों में से हैं।

ये संस्कृत भाषा के बड़े विद्वान थे और काव्य-शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता थे। इनकी कविताओं पर संस्कृत के कवियों की भावनाओं का बहुत प्रभाव था।

पांडित्य के कारण इनकी कविताएं बहुत गूढ़ और कठिन हो गई हैं। उनमें स्वाभाविक रस और प्रवाह नहीं मिलता। थोड़े ही—ऊंचे विद्वान— इनकी रचनाओं का आनंद ले पाते हैं। सूरदास और तुलसीदास की भांति ये लोक प्रिय न हो सके।

ये ओड़छा नरेश—महाराजा रामसिंह के भाई इन्द्रजीत सिंह के पास रहते थे। महाराजा वीरबल ने एक छन्द पर इन्हें ६ लाख रुपए दिए थे।

ये अत्यन्त रसिक स्वभाव के व्यक्ति थे जिसका प्रभाव इनकी कविता पर भी पड़ा। इन्होंने रसिक–प्रिया, कवि प्रिया, रामचन्द्रिका, विज्ञान—गीता, वीरसिंह चरित्र, जहांगीर चन्द्रिका, नख-शिख और रत्न–बावनी नामक पुस्तकें लिखी हैं। इनका सबसे सुन्दर सरस और सफल ग्रन्थ रामचन्द्रिका है।

राम-वन-गमन

दसरत्थ महा मन मोद रये। तिन बोलि वसिष्ठ सों मंत्र लये।
दिन एक कहो सुध सोभरयो। हम चाहत रमहि राज दयो॥
यह बात भरत्थ की मातु सुनी। पठऊँ बन रामहिं बुद्धि गुनी॥
तेहि मंदिर मों नृप सो विनयो। वर देहु हुतो हमको जु दयो॥
नृप बात कही हँसि हेरि हियो। वर माँगि सुलोचनि मैं जु दियो॥
नृप तासु बिसेस भरत्थ लहै। बरयैं बन चौदह राम रहैं॥

यह बात लगो उर बज्र तूल।
हिय फाट्यो ज्यौं जीरन दुकूल॥

उठि चले विपिन कहँ सुनत राम।
तजि तात मातु तिय बंधु धाम॥

छूटे सबै सबनि के सुख क्षुत्पिपास।
विद्वद्विनोद गुण, गीत विधान बास॥

ब्रह्मा दि अंत्यजन अंत अनन्त लाग।
भूले अशेष सविशेषनि राग भाग॥

गये तहँ राम जहाँ निज मात।
कही यह बात कि हौं बन जात॥

कछू जनि जी दुख पावहु माइ।
सुदेहु असीस मिलौं फिरि आइ॥

अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्राण जात।
राज बाप मोललै करै जु पोषि देह गात॥

दास होय पुत्र होय शिष्य होय कोइ माइ!
सासना न मानई तो कोटि जन्म नर्क जाइ

कौशल्या—

मोहि चलौ बन संग लिये। पुत्र तुम्हैं हम देखि जिये।
औधपुरी महँ गाज परै। कै अब राज्य भरत्थ करै।

राम—

तुम क्यों चलौ बन आजु। जिन सीस राजत राजु॥
जिय जानिये पतिदेव। करि सर्व भाँतिन सेव॥
पति देइ जो अति दुःख। मन मानि लीजै सुक्ख॥
सब जगत जानि अमित्र। पति जानि केवल मित्र॥
नित पति पंथहि चलिये। दुख सुख को दलु दलिये॥
तन मन सेवहु पति को। तब लहिवे सुमति को॥

जोग जाग व्रत आदि जु कीजै । न्हान, गानगुन, दान जु दीजै ॥
धर्म कर्म-सब निष्फल देवा । होहि एक फल कै पति सेवा ॥
तात मातु जन सोदर जानौ । देव जेठ सब संगिहु मानो ॥
पुत्र पुत्रसुत श्री छविछाई । हैं विहीन भरता दुखदाई ॥

नारी तजै न आपनो सपने हू भरतार ।
पंगु पंगु वौरा बधिर अंध अनाथ अपार ॥
अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी ।
बालक पंडु कुरूप सदा कुवचन जड़ जोगी ॥
कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी ।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी ॥

नारि न तजहि मरे भरतारहिं ।
ता संग सहहि धनंजय झारहिं ॥
जो केहु विधि करतार जियावहि ।
तौ केहि कहँ यह बात बनावहिं ॥

गान बिन मान बिन हास बिन जीवहीं ।
तप्त नहिं खाय जल सीत नहिं पीवहीं ॥
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवहीं ।
सीत जल न्हाय नहिं उष्ण जल जोवहीं ॥
खाय मधुरान्न नहिं पाय पनहीं धरैं ।
काय मन वाच सब धर्म करिबो करैं ॥
कृच्छ उपवास सब इंद्रियन जीतहीं
पुत्र सिख लीन तन जौलगि अतीतहीं ॥

पति हित पितु पर तनु तज्यो सती साखि ह्व देव ।
लोक लोक पूजित भई, तुलसी पति की सेव ॥
मनसा वाचा कर्मणा हमसों छाँड़हु नेहु ।
राजा को विपदा परी तुम तिनकी सुधि लेहु ॥

उठि रामचन्द्र लक्ष्मण समेत । तब गये जनक-तनया निकेत ।
सुनि राजपुत्रि के एक बात । हम बन पठये हैं नृपति तात ॥
तुम जननि सेव कहँ रहहु बाम । कै जाहु आजु ही जनक धाम ॥
सुनि चंद्रवदनि गजगमनि एनि । मन रुचै सो कीजै जलजनैनि ॥

सीता—

न हौं रहौं न जाहूँ जू विदेह-धाम को अबै ।
कही जु बात मातु पै सु आजु मैं सुनो सबै ॥
लगै छुधाहि माँ भली विपत्ति माँझ नारिये ।
पियास-त्रास नीर पीर युद्ध में सँभारिये ॥

लक्ष्मण—

वन महँ विकट विविध दुख सुनिये ।
गिरि गह्वर मग अगमहिं गुनिये ॥
कहुँ अहि हरि कहुँ निशिचर चरहीं ।
कहुँ दव दहन दुसह दुखसरहीं ॥

सीता—

केसवदास नींद भूख प्यास उपहास त्रास
दुख को निवास विष मुखहू गह्यो परै ।

वायु को बहन दिन दावा को दहन बड़ो
बाड़वा अनल ज्वाल जाल में रह्यौ परै।
जीरन जनमजात जोर जुर घोर परि
पूरन प्रगट परिताप क्यों कह्यौ परै।
सहिहौं तपन ताप पर के प्रताप
रघुबीर को बिरह बीर! मो सों न सह्यौ परै।

राम--

धाम रहो तुम लच्छमण राज की सेव करौ।
मातन के सुनि तात! सुदीरघ दुःख हरौ॥
आय भरत्थ कहाँ धौं करैं जिय भाय गुनौ।
जो दुख देयँ तो लै उर गों यह सीख सुनो॥

लक्ष्मण--

शासन मेरी जाय क्यों, जीवन मेरे हाथ।
ऐसी कैसे बूझिये, घर सेवक बन नाथ॥

बिपिन मारग राम बिराजहीं।
सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं॥

विविध श्रीफल सिद्ध मनो फलो।
सकल साधन सिद्धहि लै चलो॥

राम चलत सब पुर चल्यो जहँ तहँ सहित उछाह।
मनो भगीरथ पथ चल्यो, भागीरथी प्रवाह॥

रामचन्द्र धाम तें चले सुने जबै नृपाल।
बात को कहै सुनै है गये महा बिहाल॥
ब्रह्मरंध्र फोरि जीव यौं मिल्यो जुलोक जाय।
गेह तूरि ज्यों चकोर चंद्र में मिलै उड़ाय॥

भूषण

(जन्म—संवत १६७४—मृत्यु १७७२)



प्राचीन काल के कवियों में वीर-रस की कविताएं लिखने में कविवर भूषण का नाम सबसे ज्यादा प्रसिद्ध है ।

संयुक्त प्रांत के तिकवांपुर गांव में भूषण का जन्म हुआ था। इन के पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। उनके चार पुत्र थे—चिंतामणि, भूषण, मतिराम और नीलकंठ (उपनाम जटा शंकर) चारों भाई हिंदी के उत्कृष्ट कवि हुए हैं ।

भूषण बचपन में बड़े अल्हड़ स्वभाव के थे। किसी काम में मन न लगाते थे। सुनते हैं चिन्तामणि की पत्नी, (इनकी भावज) से खाना खाते समय इन्होंने नमक मांगा। उसने ताना मारा कि

क्या नमक कमाकर रख गये हो । यह बात इनके कलेजे में चुभ गई । यह थाली छोड़ कर चल दिए और बोले जब नमक कमाकर लायेंगे तभी यहां भोजन करेंगे । इसके पश्चात इन्होंने साहित्य का ज्ञान पाने में घोर परिश्रम किया ।

पहले यह चित्रकूटाधिपति हृदयराम सोलंकी के पुत्र रुद्रराम के पास रहे, फिर वहां से ये महाराजा शिवाजी के पास चले गए । शिवाजी ने इनका बड़ा मान किया । लाखों रुपए, घोड़े, हाथी और गांव इनको मिले । कहते हैं इन्होंने एक लाख रुपए का नमक अपनी भाभी के पास भेजा था ।

ये कुछ दिनों बुंदेला महाराज छत्रसाल के यहां भी रहे थे ।

इन्होने शिवाजी की वीरता का वर्णन अपनी कविताओं में खूब किया है । महाराज छत्रसाल की प्रशंसा में भी इन्होंने छंद लिखे हैं । इनकी कविता में वीरता और जातीयता के भाव ओजस्वी भाषा में वर्णित हैं ।

इन्होने शिवराज भूषण, भूषण हजारा, भूषण उल्लास और दूषण उल्लास नामकी पुस्तकें लिखी हैं ।

कवित्त

१

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है।
पौन बारिबाह पर सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है।
दावा द्रुम दण्ड पर चीता मृगझुण्ड पर,
भूषण बितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है॥

२

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज,
भूषण जे बाज की समाजैं निदरत है।

पौन पाय हीन दृग घूँघट में लीन,
मीन जल में विलीन क्यों बराबरो करत है ॥
सब ते चलाक चित्त तेऊ कुलि आलम के,
रहैं उर अन्तर मैं धीर न धरत है।
जिनि चढ़ि आगे को चलाइयतु तीर तीर,
एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत है ॥

३

दान समै द्विज देखि मेरुहू कुबेरुहू की,
सम्पति लुटाइबे को हियो ललकत है।
साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर
सिव की कथान में सनेह झलकत है।
भूषण जहान हिंदुवान के उबारिबे को,
तुरकान मारिबे को बीर बलकत है।
साहिन सों लरिबे की चरचा चलत आनि,
सरजा के दृगन उछाह छलकत है ॥

४

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठे बार बार,
दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है।
बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर पति,
फिरत फिरङ्गिन की नारि फरकति है ॥

थर थर कांपत कुतुबशाह गोलकुण्डा,
हहरि हबसभूप भीर भरकति है।
राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि,
केते बादसाहन की छाती दरकति है॥

५

राखी हिंदुवानी हिंदुवान को तिलक राख्यो,
अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं।
राखी रजपूती रजधानी राखी राजन की,
धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं॥
भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की,
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी मैं।

६

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि,
कीन्हीं सिवराज वीर अकह कहानियां।
भूषन भनत तिहूँ लोक में तिहारी धाक,
दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियां॥
आगरे अगारन ह्वै फाँदत कगारन छ्वै,
लाँधती न बारन मुखन कुम्हलानियां।

कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भाग
जाहिं बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानियां ॥

७

छूटत कमान और तीर गोली बानन के,
मुसकिल होत मुरचान हू की ओट मैं।
ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि पर हला बीर भट जोट मैं ॥
भूषन भनत तेरी किस्मत कहां लौं कहौं,
हिम्मत यहाँ लगि है जाकी भट जोट मैं।
ताव दै दै मूँछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदे परें कोट मैं ॥

८

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहे खरो कियो जाय जारन के नियरे ॥
जानि गैरमिसिल गुमीले गुमा धारि उर
कीन्हों ना सलाम ना बचन बोले सियरे ॥
भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमकते लाल मुख सिवा कौ निरखि भये,
स्याह मुख नौरंग सिपाह मुख पियरे ॥

६

ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहनवारी,
ऊँचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती है।
कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं,
तीन बेर खाती सो तीन बेर खाती हैं॥
भूषन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग,
बिजन डुलाती ते वे बिजन डुलाती हैं।
भूषन भनत सिबराज वीर तेरे त्रास,
नगन जड़ाती ते वै नगन जड़ाती हैं॥

वृन्द

(जन्म संवत १७३० के लगभग)



वृन्द कवि नीति-विषयक दोहे लिखने में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। वृन्द का प्रारम्भिक कवि-जीवन औरंगजेब के दरबार में बीता था। बाद में औरंगजेब के पोते अज़ीमुश्शान ने जो स्वयं भी ब्रजभाषा और उर्दू का अच्छा कवि था इन्हें औरंगजेब से मांग कर अपने पास रख लिया। वह बंगाल बिहार और उड़ीसे का सूबेदार था। वृन्द को भी उसने अपने पास ढाके में रक्खा।

लोग कहते हैं इनका जन्म मथुरा प्रान्त के किसी गाँव में गौड़ ब्राह्मण कुल में हुआ था। कुछ लोगों का कहना है इनका जन्म जोधपुर राज्य के मेड़ता गाँव में हुआ था—इनके वंशज आजकल मेड़ता में, जयपुर में और किशनगढ़ में रहते हैं। उन्होंने वृन्द कवि के बनाये सब ग्रन्थों के नाम और चित्र देकर इनका जीवन-चरित्र छपवाया है।

वृन्द की प्राय: सभी कविता नीति विषयक है। नीति से सम्बन्ध रखने वाले इतने सुंदर दोहे हिन्दी भाषा के दूसरे कवि ने नहीं लिखे। दोहों के अतिरिक्त इन्होंने दूसरे छंदों में भी कविताएं लिखी हैं।

इनकी दृष्टांत सतसई या वृंदविनोद सतसई, भावपंचासिका और श्रृङ्गार-शिक्षा नाम की पुस्तकें कही जाती हैं।

दोहे

जो जाको गुन जानहो, सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अंबहि लेत है, काग निबौरी हेत॥

जाही ते कछु पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पै गये, कैसे बुझत पियास॥

दीबो अवसर को भलो, जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम॥

अपनी पहुँच विचारि कै, करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर॥

विद्याधन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाये ना मिले, ज्यों पंखा की पौन॥

बुरे लगत सिख के वचन, हिये विचारो आप।
करुवी भेषज बिन पिये, मिटै न तन की ताप॥

फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजे ब्यौपार।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार॥

नयना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत॥

अति परचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलियागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय॥

भले बुरे सब एक सों, जौ लौं बोलत नाहिं।
जानि परतु हैं काक पिक, ऋतु बसन्त के माहिं॥

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय॥

कछु बसाय नहिं सबल सों, करै निबल पर जोर।
चले न अचल उखार तरु, डारत पवन झकोर॥

जो जेहि भावै सो भलौ, गुन को कछु न विचार।
तज गजमुकता भीलनी, पहिरति गुञ्जा हार॥

जो पावै अति उच्चपद, ताको पतन निदान।
ज्यौं तपि तपि मध्याह्नलौं, अस्त होतु है भान॥

जिहि प्रसङ्ग दूपन लगे, तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत दूध कलाली हाथ॥

जाके सँग दूषण दुरै, करिये तिहि पहिचानि।
जैसे समझै दूध सब, सुरा अहीरी पानि॥

मूरख गुन समझै नहीं, तौ न गुनी में चूक।
कहा घट्यो दिन को विभौ, देखै जौ न उलूक॥

करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक को, आम कहाँ ते होइ॥

बहुत निबल मिल बल करें, करैं जु चाहैं सोय।
तिनकन की रसरी करी, करी निबन्धन होय॥

कारज धीरे होत हैं, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै, केतक सींचो नीर॥

क्यों कीजै ऐसो जतन, जाते काज न होय।
परबत पर खोदे कुआँ, कैसे निकसै तोय॥

बीर पराक्रम ना करे, तासों डरत न कोइ।
बालकहू को चित्र को, बाघ खिलौना होइ॥

उत्तम जन सों मिलत ही, अवगुन सो गुन होय।
घनसँग खारो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय॥

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर परत निसान॥

भली करत लागति बिलम, बिलम न बुरे बिचार।
भवन बनावत दिन लगै, ढाहत लगत न बार॥

कछु कहि नीच न छेड़िये, भलो न ताको सङ्ग।
पाथर डारे कीच में, उछरि बिगारै अङ्ग॥

ऊपर दरसै सुमिल सी, अन्तर अनमिल आंक।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फांक॥

ओछे नर के पेट में, रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात॥

जूआ खेले होतु है, सुख सम्पति को नास।
राजकाज नल ते छुट्यो, पांडव किय बनवास॥

लोकन के अपवाद को, डर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरी, सुनत रजक के बैन॥

तृनहूँ ते अरु तूलते, हरुवो याचक आहि।
जानतु है कछु मांगि है, पवन उड़ावत नाहिं॥

गिरधर कविराय

[जन्म सम्वत् १७७०]



गिरधर कविराय का कोई बड़ा काव्य-ग्रन्थ नहीं मिलता—फिर भी इनका नाम जनसाधारण में बहुत प्रसिद्ध है । इनकी नीति विषयक, जीवन का व्यावहारिक ज्ञान देने वाली कुण्डलिया लोगों की ज़बान पर चढ़ी हुई हैं।

इनकी भाषा से जान पड़ता है कि इनका जन्म अवध में कहीं हुआ है । कहा जाता है कि इनके पड़ौस में एक बढ़ई रहता था—उससे इन का झगड़ा हो गया । उस बढ़ई ने राजा को एक अनोखा पलंग बनाकर दिया । उसे देखकर राजा ने एक और वैसा ही पलङ्ग बना देने को बढ़ई से कहा । बढ़ई ने राजा से गिरधरराय के आंगन में लगे एक बेरी के पेड़ की लकड़ी मांगी । राजा ने उसे काटने की आज्ञा देदी । गिरधर ने इसे अपना अपमान समझा और राजा से अपनी आज्ञा वापिस लेने की बहुत प्रार्थना की किंतु वह एक न माना। इस पर वह घर छोड़कर भ्रमण को निकल पड़े । यात्रा में इन्होने अपनी पत्नी के सहयोग से संसार का व्यावहारिक ज्ञान देने वाली कुण्डलियां लिखीं । इनमें अनुभव की बातें मिलती हैं ।

इनकी कुण्डलियों का संग्रह 'गिरधर की कुण्डलिया' के नाम से प्रकाशित है ।

कुण्डलियां

१

दौलत पाइ न कीजिये, सपने में अभिमान।
चञ्चल जल दिन चारि को, ठाँउ न रहत निदान॥
ठाँउ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजै।
मीठे बचन सुनाय, बिनय सब ही सों कीजै।
कह गिरधर कविराय, अरे यह सब घर डोलत।
पाहुन निशि दिन चारि, रहत सबही के दौलत॥

२

साईं सब संसार में, मतलब को व्यवहार।
जब लगि पैसा गाँठ में, तब लगि ताको यार॥
तब लगि ताको यार, यार सँग ही सँग डोलैं।
पैसा रहा न पास, यार मुख से नहिं बोलैं॥

कह गिरधर कविराय, जगत यह लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोई साँई ॥

३

बीती ताहि बिसारि दै, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवे सहज में, ताही में चित देइ॥

ताही में चित देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसे न कोइ, चित्त में खेद न पावै॥
कह गिरधर कविराय, यहै करु मन परतीती।
आगे की सुधि लेइ, समुझि बीती सो बीती॥

४

चिन्ता ज्वाल शरीर बन, दावा लगि लगि जाय।
प्रगट धुआं नहिं देखियत, उर अंतर धुँधिवाय॥

उर अन्तर धुँधिवाय, जरै ज्यों कांच की भट्टी।
जरिगो लोहू मांस, रह गई हाड़ की ठट्टी॥
कह गिरधर कविराय, सुनो रे मेरे मिन्ता।
वे नर कैसे जियें, जाहि तन व्यापै चिन्ता॥

५

गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय॥

शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोउ को इक रङ्ग, काग सब भये अपावन॥
कह गिरधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मनके।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के॥

६

साईं अपने चित्त की, भूलि न कहिये कोइ।
तब लग मन में राखिये, जब लग कारज होइ॥
जब लग कारज होइ, भूल कबहूं नहिं कहिये।
दुर्जन तातो होय, आप सियरे ह्वै रहिये॥
कह गिरधर कविराय, बात चतुरन की नाईं।
करतूति कहि देत, आप कहिये नहिं साईं॥

७

साईं समय न चूकिये, यथाशक्ति सन्मान।
को जाने को आइहै, तेरी पौरि प्रमान॥
तेरी पौरि प्रमान, समय असमय तकि आवै।
ताको तू मन खोलि, अङ्क भरि हृदय लगावै॥
कह गिरधर कविराय, सबै यामैं सधि आई।
शीतल जल फल फूल, समय जनि चूको साईं॥

भारतेंदु हरिश्चन्द्र

[जन्म सम्वत १६०७—मृत्यु १६४२]



हिन्दी साहित्य को नवीन प्रवाह देने वाले बाबू हरिश्चन्द्र गद्य और पद्य दोनों ही प्रकार का साहित्य लिखने में सिद्ध हस्त थे। इनका जन्म बंगाल के प्रसिद्ध सेठ अमीचंद्र के घराने में हुआ था।

इनके पिता श्री गोपालचंद्र जी बनारस के एक प्रसिद्ध रईस थे, जो गिरधरदास के उपनाम से कविता लिखते थे और अनेक पुस्तकों के रचियता थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने साहित्य के क्षेत्र में अपना नाम अपने पिता से भी अधिक चमकाया।

आधुनिक हिन्दी साहित्य का सूत्र-पात का श्रेय इन्हें मिला है। इन्होंने साहित्य के विषय को व्यापक बनाया। देश-प्रेम, जातीयता, राष्ट्रीयता, प्रकृति वर्णन तथा जीवन की समस्याओं को इन्होंने साहित्य में स्थान दिया। साथ ही भाषा में भी बड़ा परिवर्तन कर दिया।

साहित्य-सृष्टा के रूप में इन्होने हिन्दी-साहित्य की जितनी सेवा की उतनी ही साहित्य का प्रचार करने की भी। पत्रिकाएँ निकालकर, साहित्यिकों को पुरस्कृत करके तथा अनेक प्रकार से हिन्दी साहित्य का इन्होंने प्रसार किया।

इन्होंने अपनी छोटी सी आयु में ही १७५ ग्रंथों की रचना की थी, जिनमें अधिकांश काव्य और नाटक हैं। इसीसे इनकी प्रतिभा का अंदाज लगाया जा सकता है।

मृतक का रूप

सोई मुख जेहि चन्द बखान्यो । सोई अङ्ग जेहि प्रिय करि जान्यो ।।
सोई भुज जो प्रिय गर डारें । सोइ भुज निज नर विक्रम पारें ।।
सोई पद जिहि सेवक वन्दत । सोई छवि जेहि देखि अनन्दत ।।
सोइ रसना जहँ अमृत बानी । जेहि सुनिकै हिय नारि जुड़ानी ।।
सोइ हृदय जहँ भाव अनेका । सोई सिर जहँ निज बच टेका ।।
सोई छविमय अङ्ग सुहाये । आजु जीव बिनु धरनि सुहाये ।।
कहाँ गई वह सुन्दर सोभा । जीवत जेहि लखि सब मन लोभा ।।
प्रानहु ते बढ़ि जा कहँ चाहत । ता कहँ आजु सबै मिलि दाहत ।।
फूल बोझहू जिन न सहारे । तिन पै बोझ काठ बहु डारे ।।
सिर पीड़ा जिनकी नहिं हेरी । करत कपाल-क्रिया तिन केरी ।।
छिनहूँ जे न भये कहुँ न्यारे । तेऊ बन्धुगन छांडि सिधारे ।।
जो दृग कोर महीप निहारत । आजु काक तेहि भोज विचारत ।।

भुजबल जे नहिं भुवन समाये। ते लखियत मुख कफन छिपाये ।।
नरपति प्रजा भेद बिनु देखे। गने काल सब एकहि लेखे ।।
सुभग कुरूप अमृत विष साने। आजु सबै इक भाव बिकाने ।।
पुरु दधीच कोऊ अब नाहीं। रहे नाम ही ग्रन्थन माहीं ।।

× × ×

शारदी सुषमा

सरद बिमल ऋतु सोहई निरमल नील अकास।
निसानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास ।।
चारु चमेली बन रही महमह महँकि सुबास।
नदी तीर फूले लखौ सेत सेत बहु कास ।।
कमल कुमोदिनी सरन में फूले सोभा देन।
भौंर-वृन्द जा पै लखौ गूँजि गूँजि रस लेत ।।
बसन चाँदनी चन्द मुख उडुगन मोती-माल।
कास फूल मधुहास यह सरद किधौं नव-बाल ।।

× × ×

बाल-छवि

छोटो सो मोहनलाल छोटे छोटे ग्वाल-बाल
छोटी छोटी चौतनी सिरन पर सोहैं।
छोटे छोटे भँवरा चकई छोटी छोटी लिये
छोटे छोटे हाथन सों खेलें मन मोहैं ।।

छोटे छोटे चरन सों चलत घुटुरुवन
चढ़ीं ब्रज-बाल छोटी छोटी छवि जोहैं।
'हरीचन्द' छोटे छोटे कर पै माखन लिये
उपमा बरनि सकै ऐसे कवि को हैं॥

× × ×

गंगा-वर्णन

नव उज्जल जलधार हार हीरक सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्ता-मनि पोहति॥

लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नर-गन-मन बिबिध मनोरथ करत मिटावत॥

श्री हरि-पद-नख-चन्द्रकान्त-मनि-द्रवित सुधारस।
ब्रह्म-कमण्डल मण्डन भवखण्डन सुर-सरबस॥

शिव-सिर-मालति-माल भगीरथ नृपति पुण्य-फल।
ऐरावत-गज-गिरि-पति-हिम-नग-कण्ठहार कल॥

सगर-सुवन सठ सहस परस जलमात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर सञ्चारन॥

कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हूँ नहिं तजी रही अङ्कम लपटाई॥

कहूँ बँधे नव घाट उच्च गिरिवर सम सोहत ।
कहुँ छतरी कहुँ मढ़ी बढ़ी मन मोहत जोहत ॥

धवल धाम चहुँ ओर फरहरत ध्वजा पताका ।
घहरत घण्टा धुनि धमकत धौंसा करि साका ॥

मधुरी नौबत बजत कहूँ नारि नर गावत ।
वेद पढ़त कहुँ द्विज कहुँ जोगी ध्यान लगावत ॥

दीठि जहीं जहँ जात रहत तितहीं ठहराई ।
गङ्गा-छवि 'हरिचन्द' कछू बरनी नहिं जाई ॥

श्रीधर पाठक

[जन्म सम्वत १६१६—मृत्यु सम्वत १६८५]



आपका जन्म आगरे के जालन्धरी गाँव में हुआ था। आप प्रतिभा-शाली कवि थे। आप बृजभाषा और खड़ी बोली के श्रेष्ठ कवि कहे जाते हैं। आप अंग्रेजी के भी सुपण्डित थे। आपने गोल्डस्मिथ की तीन पुस्तकों का हिंदी में सुन्दर अनुवाद किया है। एकांत वासी योगी, ऊजड़ ग्राम और श्रान्त पथिक। आपकी खड़ी बोली की कविता में व्याकरण के यत्रतत्र कुछ दोष आगए हैं। आप केवल प्रकृति मूलक कवि ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय कवि भी थे। 'काश्मीर सुषमा' आपकी एक सुन्दर रचना है। आपकी भाषा में सब से अपेक्षनीय गुण है माधुर्य और लालित्य। इसमें तत्सम शब्द भी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। आप अपनी साहित्य सर्जना के बल पर लखनऊ के साहित्य सम्मेलन में सभापति का आसन भी ग्रहण कर चुके हैं। आपका कालिदास के 'ऋतुसंहार' का अनुवाद भी सौष्टव पूर्ण है।

आपकी फुटकर रचनाएँ भी हिन्दी का स्थायी साहित्य हैं। आपने करीब १५ पुस्तकें लिखी हैं।

घन विनय

हे बारिद ! नव जलधर ! हे धाराधर नाम !
हे पयोद ! पय सुन्दर ! हे अतिशय अभिराम !!
हे प्रानद आनन्द घन, हे जगजीवन सार !
हे सजीव जीवन-धन, हे त्रिभुवन आधार !
हे घनस्याम परम प्रिय, हे आनन्द घनस्याम !
मुदित करनहार जन-हिय, भीय छुड़ावनहार !
हे बक-तीय उड़ावन, हीय - बढ़ावनहार !
हे रन बङ्क धनुसधर, सर तरकस जल धार !
ग्रीसम बिसम कलुस-हर, रविकर प्रखर प्रहार !
'हे गिरि तुङ्ग शिखर चर, हे निर्भय नभ-यान !
हे नित नूतन तन धर, हे पवमान विमान !
तुम भारत के धनबल, गुन गौरव आधार !
तुम ही तन तुम ही मन, तुम प्रानन-पतवार !

परम पुरातन तुम्हरो, भारत संग सत्प्रेम।
जिहि जानत जग सगरौ, मानत निश्चिल नेम॥
सो तुम को नहिं चहियत, छांडन हित सम्बन्ध।
अटल सदैवहि कहियत, पूरन प्रकृति प्रबन्ध॥
सोचहु सुमिरि सुजस निज, हे उज्जल जस भौन॥
इन दुखियनहिं तुम्हिं तज, घन! अवलम्बन कौन?
पठवहु परम सुहावनि पावनि पूरब पौन।
सुभ सादेस सुनावनि, जलझर लावनि जौन॥
स्याम घटा लै धावहु, पावहु नभहिं दबाय।
दिव्य छटा फैलावहु, लावहु दलहि सजाय॥
घोरहु घुमड़ि घमंकहु घेरहु दसहु दिसान।
दामिनि द्रुतहि दमंकहु, धारहु धनुस निसान॥
करखा क्षुपित गवावहु, जिहि सुनि हिय हरसाय।
बरखा विपुल मचावहि, जिहि लखि जिय भरि जाय॥
गरजन गहन सुनावहु, रन व्रत वीर समान।
लरजन ललित दिखावहु, बाँधहु धुर धुरवान॥
मुग्ध मयूर नचावहु, निज घन घोर सुनाय।
दादुर भेक बुलावहु नव अभिषेक कराय॥
कहुँ-कहुँ कड़क सुनावहु, बिज्जु पतन ठनकार।
कहुँ मृदु श्रवन करावहु, झिल्लीगन झनकार॥

बन बन कीट पतङ्गन, घर घर तिय जन तान।
पुरवहु रङ्ग बिरङ्गन, हे बहु ढङ्ग निधान॥

बीर - बहूटिन के हित, हरि हरि घास बिछाउ।
करहु नवेलिन के चित, रति-रस केलि उछाउ॥

पोखर नदी तड़ागन, बागन बगियन बीच।
गैल गली घर आँगन, भरवहु मचावहु कीच॥

कजरी मधुर मलारन की धुनि पुनि सुनवाउ।
मङ्गल मोद मनावन की चर्चा चलवाउ॥

झूलन फूल हिंडोलन, काम किलोल कराउ।
पुनि पुनि पिय पिय बोलन, पपियन प्यास बुझाउ॥

करि कृतकृत्य किसानन, सम्वतसर सरसाउ।
सींचि सस्य तृन धानन, तब निज धाम सिधाउ॥

समै समै पुनि आवहु, पुनि जावहु इहि रीति।
सहज सुभाग बढ़ावहु, गहि मग प्राकृत नीति॥

प्रथित प्रेम रस पागहु, पूरन प्रनय प्रतीत।
सदा सरस अनुरागहु, हे घन! विनय विनीत॥

× × ×

भारतसुत

अहो ! नव युव वर, प्रिय छात्र वृन्द !

भारत-हृदि-नन्दन, आनन्द-कन्द !!

जीवनतरु-सुन्दर-सुख-फल अमन्द !

भारत - उर-आशा - आकाश-चन्द !!

आरज गृह - गौरव - आधार - थम्ब !

भारत - भुवि - सर्वस प्रानावलम्ब !!

तुमही तिहि तन, मन,धन, रजत जोति !

हीरा,मनि, मरकत, मानिक्य, मोति !!

तुमही तिहि आतम-अन्तर-शरीर !

प्रानाधिक प्रियतम सुत, धीर, वीर !!

तुम्हरे नवविकसित सुठि सबल अंग ।

उन्नत मति चंचल चित चपल ढंग ।।

शैशव गुन सम्भव, नव नव तरंग ।

नव वय, नव विद्या, नव-युव-उमंग ।।

बाढ़हु भुवि स्वर्गिक सेवा के हेतु ।

फहरै जग भारत-कीरति को केतु ।।

× × ×

स्वर्गीय वीणा

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला,
सुमञ्जु वीणा बजा रही है।
सुरों के संगीत की-सी कैसी,
सुरीली गुंजार आ रही है॥

हरेक स्वर में नवीनता है,
हरेक पद में प्रवीनता है।
निराली लय है, औ लीनता है,
अलाप अद्भुत मिला रही है॥

अलक्ष्य पदों से गत सुनाती,
तरल तरानों से मन लुभाती।
अनूठे अटपट स्वरों में स्वर्गिक,
सुधा की धारा बहा रही है॥

कोई पुरन्दर की किंकरी है,
कि या किसी सुर की सुन्दरी है।
वियोग-तप्ता सी भोग-मुक्ता,
हृदय के उद्गार गा रही है॥

कभी नई तान प्रेममय है,
कभी प्रकोपन कभी विनय है।
दया है दाक्षिण्य का उदय है,
अनेकों बानक बना रही है॥

भरे गगन में हैं जितने तारे,
हुए हैं बदमस्त गत पै सारे।
समस्त ब्रह्माण्ड भर को मानों,
दो उंगलियों पर नचा रही है॥

सुनो तो सुनने की शक्ति वालो,
सको तो जाकर के कुछ पता लो।
है कौन योगन जो है गगन में,
कि इतनी चुलबुल मचा रही है॥

नाथूराम शंकर

[जन्म सम्वत १९१६—मृत्यु सम्वत १९८८]



शंकर जी का जन्म हरदुआगंज (अलीगढ़) में हुआ था। आप हिन्दी, संस्कृत और उर्दू के अच्छे जानकार थे। आर्यसमाजी होने के कारण आप की अधिकांश कविताएँ सुधारवादी और ईश्वर-प्रेम से परिपूर्ण हैं। आप एक सिद्धहस्त वैद्य थे। द्विवेदी जी ने पाँच कवियों के संग्रह में आपको भी स्थान दिया है। आप ब्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में ही सुन्दर और चुभती हुई चीजें लिखते थे। ये बड़े ही हाजिर-जवाब और प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। आपकी समास्या पूर्तियां भी बहुत सरस होती थीं। कहीं कहीं ग्राम्य शब्दों का भी प्रयोग इनकी भाषा में पाया जाता है। आप अपने समय के कविता-क्षेत्र में पर्याप्त सम्मान के अधिकारी थे। आपकी कुछ कविताएँ शृङ्गार रस में भी हैं। आपकी कविता कहीं कहीं तो स्वाभाविकता का अतिक्रम सी कर जाती हैं। अत्युक्ति की भी मात्रा आपकी रचनाओं में है।

आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं—अनुराग रत्न, वायस विजय, शंकरसरोज गर्भरण्डा रहस्य आदि।

निदाघ-निदर्शन

(१)

बीते दिन बसन्त ऋतु भागी।
गरमी उग्र कोप कर जागी॥
ऊपर भानु प्रचण्ड प्रतापी।
भू पर भबके पावक पापी॥
आतप बात मिले रस-रूखे।
झाबर झील सरोवर सूखे॥
जिन पूरी नदियों में जल है।
उनमें भी काँदा दल दल है॥

(२)

अवनीतल में तीत नहीं है।
हिम-गिरि पै भी शीत नहीं है॥

पूरा-सुमन विकास नहीं है।
    और लहलही घास नहीं है॥
गरम-गरम आँधी आती है।
    भूभल बरसाती जाती है॥
भाँखर भाड़ रगड़ खाते हैं।
    आग लगे बन जल जाते हैं॥

(३)

दीपक-ज्योति जहाँ जगती है।
    चमक चञ्चला-सी लगती है॥
व्याकुल हम न वहाँ जाते हैं।
    जाकर क्या कुछ कर पाते हैं॥
ग्राम-ग्राम प्रत्येक नगर में।
    घूमे घोर ताप घर घर में॥
रुद्र-रोष दिनकर के मारे।
    तड़प रहे नारी नर सारे॥

(४)

भीतर बाहर से जलते हैं।
    अकुला कर पंखे झलते हैं॥
स्वेद बहे, तन डूब रहा है।
    घबराते मन ऊब रहा है॥

काल पड़ा नगरों में जल का।

मोल मिले उष्णोदक नल का॥

वह भी कुछ घंटों बिकता है।

आगे तनिक नहीं टिकता है॥

(५)

पावक-बाण दिवाकर मारे!

हा! बड़वानल फूंक पजारे॥

खौल उठे नद सागर सारे।

जलते हैं जल-जन्तु बिचारे॥

भानु-कृपा न कढ़े वसुधा से।

चन्द्र न शीतल करे सुधा से॥

धूप हुताशन से क्या कम है।

हा! चांदनी रात गरम है॥

(६)

जंगल गरमी से गरमाया।

मिलती कहीं न शीतल छाया॥

घमस घुसी तरु-पुञ्जों में भी।

निकले भबक निकुञ्जों में भी॥

सुन्दर बन, आराम घने हैं।
परम रम्य प्रासाद बने हैं॥
सब में उष्ण बयार बहती है।
घाम घमस घेरे रहती है॥

(७)

विधि ! यदि वापी, कूप न होते।
तो क्या हम सब जीवन खोते ?
पर पानी उनमें भी कम है।
अब क्या करें नाक में दम है॥
कभी कभी घन रुप जाता है।
वृषारूढ़ रवि छुप जाता है॥
जो जल बादल से झड़ता है।
तो कुछ काल चैन पड़ता है॥

(८)

पान करें पाचक जल-जीरा।
चखते रहें फुलाय कतीरा॥
बरफ़ गलाय छने ठंडाई।
ओषधि पर न प्यास की पाई॥

बँगलों में परदे ख़स के हैं।
बार-बार चसके रस के हैं॥
सुखिया सुख-साधन पाते हैं।
इतने पर भी अकुलाते हैं॥

(९)

खलियानों पर दाँय चलाना।
फिर अनाज, भूसा बरसाना॥
पूरा तप किसान करते हैं।
तो भी उदर नहीं भरते हैं॥
हलवाई, भुरजी, भटियारे।
सोनी भगत, लुहार बिचारे॥
नेक न गरमी से डरते हैं।
अपने तन फूँका करते हैं॥

(१०)

हा! बायलर की आग पजारे।
झपटे झाय लपक लू मारे॥
उड़ती भूभल फाँक रहे हैं।
जलते इंजन हाँक रहे हैं॥
भानु ताप उपजावे जिसको।
वह ज्वाला न जलावे किसको॥

व्याकुल जीव-समूह निहारे।
हाय! हुतासन से अब हारे॥

(११)

जब दिन पावस के आवेंगे।
वारि बलाहक बरसावेंगे॥
तब गरमी नरमी पावेगी।
कुछ तो ठंडक पड़ जावेगी॥
भाट बने कालानल रवि का।
ऐसा साहस है किस कवि का॥
'शंकर' कविता हुई न पूरी।
जलती भुनती रही अधूरी॥

———

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

[जन्म सम्वत १९२२]



हरिऔध जी का जन्म आज़मगढ के निज़ामाबाद नामक कसबे में हुआ था। मिडिल के बाद आपने क्वीन्स कालेज में प्रवेश किया किन्तु अस्वस्थता के कारण घर पर चले गए। और वहीं पर अंग्रेजी, फ़ारसी, संस्कृत आदि भाषाओं का खूब अध्ययन किया। खड़ी बोली में आपने कई प्रकार की चीज़ें दी हैं। आप में एक गुण तो बिलकुल ही अनुपम है। आप कठिन से कठिन और सरल से सरल भाषा में सुन्दर कविता कर लेते हैं। आपने पहले पहले व्रजभाषा में कविता की थी। आपका 'प्रियप्रवास' नामक महाकाव्य एक निराला ही ग्रन्थ है। उसके प्रायः प्रत्येक स्थल बहुत सुन्दर बन पड़े हैं। विशेषतया कृष्ण वर्णन, विरह वर्णन और प्रकृति वर्णनतो अद्भुत ही चीज़ है। आपकी एक पुस्तक ठेठ हिन्दी का ठाठ, जिस में एक भी फारसी और संस्कृत का शब्द नहीं, सिविल सर्विस परीक्षा में पढ़ाई जाती है। आपके चुभते चौपदे, चोखे चौपदे और बोल चाल की रचनाएँ बहुत ही मुहावरेदार भाषा में लिखी गई हैं। आजकल आप हिन्दू युनिवर्सिटी से रिटायर होकर घर पर ही रहते हैं। आपने अभी अभी 'रस कलश' नामक एक शृंगारी ग्रन्थ लिखा है। आपकी साहित्य-सेवा हिन्दी साहित्य के इतिहास में अमर स्थान रखेगी।

प्रिय प्रवास

ऐसा आया इक दिवस जो मर्म-भेदी महा था ।
धाता ने हो दुखित भव के चित्रितों को बिलोका ।
धीरे धीरे तरणि निकला कांपता दग्ध होता ।
काला काला ब्रज अवनि में शोक का मेघ छाया ।।१।।
देखा जाता पथ जिन दिनों नित्य ही श्याम का था ।
ऐसा खोटा इक दिन उन्हीं बासरों मध्य आया ।
आंखें नीचे जिन दिन किए डूबते शोक बीची ।
देखा आते सकल-ब्रज ने नन्द गोपादिकों को ।।२।।
खोके होवे विकल जितना आत्म-सर्वस्व कोई ।
होती हैं खो स्वमणि जितनी सर्प को वेदनायें ।

दोनों प्यारे कुँवर तजिके ग्राम में आज आते ।
पीड़ा होती अधिक उससे गोकुलाधीश को थी ॥३॥

लज्जा से वे प्रथित-पथ में पांव भी थे न देते ।
जी होता था व्यथित हरि का पूँछते ही संदेसा ।
वृक्षों में हो बिपथ चल के आ रहे ग्राम में थे ।
ज्यों ज्यों आते निकट गृह के भूमि जाते गड़े थे ॥४॥

पाँवों को वे यदपि बल के साथ ही थे उठाते ।
तो भी वे थे न उठ सकते हो गए थे मनों के ।
मानों यों वे गृह गमन से नन्द को रोकते थे ।
संक्षुब्धा हो प्रबल बहती शोक-धारा जहाँ थी ॥५॥

पांवों से हो पृथक तजके संग भी साथियों का ।
थोड़े लोगों सहित गृह की ओर वे आ रहे थे ।
विक्षिप्तों सा बदन उनका आज जो देख लेता ।
हो जाता था व्यथित अति ही कष्ट पाता महा था ॥६॥

दोनों आँखें परम-कृश सी फूटती थी निराशा ।
छाई जाती बदन पर भी शोक की कालिमा थी ।
सीधे जो थे न पग पड़ते भूमि में वे बताते ।
चिन्ता द्वारा चलित नँद के चित्त की वेदनायें ॥७॥

भादों वाली भयद रजनी सूचि-भेद्या अमा थी ।
ज्यों होती है असित अति ही छा गए मेघ-माला ।
त्यों ही सारे ब्रज-सदन का हो गया शोक गाढ़ा ।
तातोंवाले ब्रज-नृपति को देख आता अकेले ॥८॥

एकाकी ही श्रवण करके कंत को सद्म आता ।
दौड़ी द्वारे जननि हरि की क्षिप्त की भाँति आई ।
यों ही आए ब्रज अधिप भी सामने शोक डूबे ।
दोनों के ही हृदय तल की वेदना थी समाना ॥९॥

आते ही वे निपतित हुई बेल उन्मूलिता सी ।
दोनों पाँवों निकट पति के हो महा खिद्यमाना ।
संज्ञा आई फिर जब उन्हें यत्न द्वारा जनों के ।
रोती रोती अति व्यथित हो यों पती साथ बोली ॥१०॥

शिक्षा का उपयोग

शिक्षा है सब काल कल्प-लतिका-सम न्यारी,
कामद, सरस महान, सुधा-सिंचित, अति प्यारी।
शिक्षा है वह धरा, बहा जिस पर रस-सोता,
शिक्षा है वह कला, कलित जिससे जग होता।

है शिक्षा सुरसरि-धार वह, जो करती है पूततम,
है शिक्षा वह रवि की किरण जो हरती है हृदय तम।
क्या ऐसी ही सुफलदायिनी है अब शिक्षा ?
क्या अब वह है बनी नहीं भिक्षुक की भिक्षा ?
क्या अब है वह नहीं दासता-बेड़ी कसती ?
क्या न पतन के पाप-पँक में है वह फँसती ?
क्या वह सोने के सदन को नहीं मिलाती धूल में ?
क्या बन कर कीट नहीं बसी वह भारत-हित-फूल में ?
प्रतिदिन शिक्षित युवक-वृन्द हैं बढ़ते जाते,
पर उनमें हम कहाँ जाति-ममता हैं पाते ?
उनमें सच्चा त्याग कहाँ पर हमें दिखाया,
देश-दशा अवलोक वदन किसका कुम्हलाया ?
दिखलाकर सच्ची वेदना कौन कर सका चित द्रवित,
किस के गौरव से हो सकी भारतमाता गौरवित।
प्यारे छात्र-समूह, देश के सच्चे सम्बल,
साहस के आधार, सफलता-लता-दिव्य-फल,
आप सबों ने की हैं सब शिक्षाएँ पूरी,
पाया वाँछित ओक दूर कर सारी दूरी।
अब कर्म-क्षेत्र है सामने, कर्म करें आगे बढ़ें,
कमनीय कीर्ति से कलित बन गौरव गिरिवर पर चढ़ें।

है शिक्षा-उपयोग यही जीवन-व्रत पालें,
जहाँ तिमिर है, वहाँ ज्ञान का दीपक बालें।
तपी भूमि पर जलद-तुल्य शीतल जल बरसे,
पारस बन-बन लौहभूत मानस को परसे।
सब देश-प्रेमिकों की सुनें, जो सहना हो वह सहें,
उनके पथ में काँटे पड़ें, हृदय विछा देते रहें।
प्रभो हमारे युवक-वृन्द निजता पहचानें,
शिक्षा के महनीय मन्त्र की महिमा जानें।
साधन कर-कर सकल सिद्धि के साधन होवें,
जो धब्बे हैं लगे, धैर्य से उनको धोवें।
सब काल सफलताएं मिलें, सारी बाधाएं टलें,
व अभिमत फल पाते रहें, चिर दिन तक फूले फलें।

भारत के नवयुवक

जाति-धन, प्रिय नवयुवक-समूह,
विमल मानस के मंजु मराल,
देश के परम मनोरम रत्न,
ललित भारत-ललना के लाल।

लोक की लाखों आँखें आज,
लगी हैं तुम लोगों की ओर,

भरी उनमें है करुणा भूरि,
लालसामय है ललकित कोर।

उठो, लो आँखें अपनी खोल,
विलोको अवनी-तल का हाल,
अनालोकित में भर आलोक,
करो कमनीय कलंकित भाल।

भरे उर में जो अभिनव ओज,
सुना दो वह सुंदर झनकार;
ध्वनित हो जिससे मानस-यंत्र,
छेड़ दो उस तंत्री के तार।

रगों में बिजली जावे दौड़,
जगे भारत-भूतल का भाग,
प्रभावित धुन से हो भरपूर,
उमग गाओ वह रोचक राग।

हो सके जिससे सुगठित जाति,
सुकंठों में गूँजे वह तान,
भाव जिसमें हों भरे सजीव,
करो ऐसे गीतों का गान।

कर विपुल साहस वज्र-प्रहार—
विफलता-गिरि को कर दो चूर।

जगा दो सफल साधना-ज्योति,
विविध बाधा–तम कर दो दूर ।

गगन में जग, भूतल में घूम,
निकालो कार्य-सिद्धि की राह,

अचल को विचलित कर दो भूरि,
रोक दो वारिधि-वारि-प्रवाह ।

धूल में क्यों मिलती है धाक,
बचा लो बची-बचाई आन,

मचा दो दोष-दलन की धूम,
मसल दो दुख को मशक-समान ।

लाभ-हित देश-प्रेम-रवि ज्योति,
आँख लो निज भावों की खोल,

त्याग करके निजता-अभिमान,
जाति-ममता का समझो मोल ।

देश के हित निज-जाति-निमित्त,
अतुल हो तुम लोगों का त्याग,

अवनि-जन-अनुरंजन के हेतु,
बनो तुम मूर्तिमान अनुराग ।

अनाथों के कहलाओ नाथ,
हरो-अबला जन-दुख अविलंब ।

सबलता करो जाति को दान,
अबल जन के होकर अवलंब ।

बनो असहायों के सर्वस्व,
अबुध जन की अनुपम अनुभूति,

वृद्ध जन के लोचन की ज्योति,
अकिंचन जन की विपुल विभूति ।

सरस रुचि रुचिर कंठ के हार,
सुजीवन-नव-घन मत्त-मयूर,

लोक-भावुकता तन-शृंगार,
सुजनता भव्य-भाल सिंदूर ।

भरो भूतल में कीर्ति कलाप,
दिखा भारत जननी से प्यार,

करो पूजन उनका पद-कंज,
बना सुरभित सुमनों का हार ।

मैथिलीशरण गुप्त

[जन्म सम्वत १६४३]



आप चिरगाँव झांसी के रहने वाले हैं और जाति के अग्रवाल वैश्य हैं। आप खड़ी बोली के सर्व श्रेष्ठ कवि ही नहीं बल्कि राष्ट्रीय कवि कहे जाते हैं। आप की कविताएं प्रसाद, ओज, माधुर्य आदि सम्पूर्ण गुणों से परिपूर्ण होती हैं। आप वर्तमान हिन्दी कविता के सूर्य कहे जा सकते हैं। आप की कविता व्याकरण की दृष्टि से बहुत शुद्ध और सरल होती है। भाव और भावनाएं आपकी अनुपम देन है। आपने 'भारत भारती' से अपना यश विश्वव्यापी बनाना प्रारम्भ किया है और अब तक अनेक रचनाओं से हिन्दी साहित्य को अलंकृत कर दिया है। जयद्रथ बध, यशोधरा, साकेत आदि ग्रन्थ तो संसार के अन्य सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थों में रक्खे जा सकते हैं। आप की कविता का क्षेत्र बहुत ही विशाल और व्यापक है और इस गुण में आप अनुपम हैं। आप राष्ट्रीय, भावुक, मनोवैज्ञानिक और मौलिक कवि हैं। आप साहित्य के ही नहीं देश के एक प्रमुख स्तम्भों में से हैं। आप राम के परम भक्त हैं। आजकल आप जेल में हैं।

निर्झर

शत-शत बाधा-बंधन तोड़
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !
प्लावित कर पृथ्वी के पर्त्त,
सम-तल कर बहु गह्वर गर्त्त,
दिखला कर आवर्त्त-विवर्त्त,
आता हूं आलोड़-विलोड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !
पारावार-मिलन की चाह,
मुझे मार्ग की क्या परवाह ?
मेरा पथ है स्वतः प्रवाह,
जाता हूँ चिर जीवन जोड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !

गढ़ कर अनगढ़ उपल अनेक,
उन्हें बनाकर शिव सविवेक,
करके फिर उनका अभिषेक,
बढ़ता हूं निज नवगति मोड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !

हरियाली है मेरे संग,
मेरे कण-कण में सौ रंग,
फिर भी देख जगत् के ढंग,
मुड़ता हूं मैं भृकुटि मरोड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !

धरकर नव कलरव निष्पाप,
हरकर संतापों का ताप,
अपना मार्ग बनाकर आप,
जाऊँ सब कुछ पीछे छोड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !

है सबका स्वागत-सम्मान,
करें यहाँ कोई रस-पान,
मेरा जीवन गतिमय गान,
काल ! तुझी से मेरी होड़,
निकल चला मैं पत्थर फोड़ !

उर्मिला–विरह

मेरी ही पृथिवी का पानी,
ले लेकर यह अंतरिक्ष सखि, आज बना है दानी !
मेरी ही धरती का धूम,
बना आज आली घन घूम।
गरज रहा गज-सा झुक झूम,
ढाल रहा मद मानी
मेरी ही पृथिवी का पानी।

अब विश्राम करें रवि-चंद्र,
उठें नये अंकुर निस्तंत्र,
वीर सुनाओ निज मृदुमंत्र,
कोई नई कहानी।
मेरी ही पृथिवी का पानी।
बरस घटा, बरसूं मैं संग,
सरसें अवनी के सब अंग,
मिले मुझे भी कभी उमंग,
सबके साथ सयानी।
मेरी ही पृथिवी का पानी।

रामनरेश त्रिपाठी

(जन्म संवत् १९४६)



आपका जन्म जौनपुर ज़िले में हुआ है । त्रिपाठी जी हिन्दी कविता-गगन के शुक्रतारा हैं। आपकी भाषा ओजपूर्ण और प्रवाह लिए होती है । आप ने 'पथिक' 'मिलन' और' स्वप्न' नामक खण्ड काव्यों से काफ़ी ख्याति प्राप्त की है । मानसी में आप की फुटकर रचनाओं का संग्रह है । आपने कविता-कौमदी नामक एक महा ग्रन्थ का सम्पादन कर के हिन्दी संसार की अनुपम सेवा की है । आप ने ग्राम्यगीतों का संग्रह भी किया है । राम चरित मानस की टीका भी की है । व्याकरण और कला का पूरा ध्यान रक्खा। है आपने अपनी कृतियों के अन्दर राष्ट्रीय भावनाएं दी हैं हिन्दीसाहित्य में आप को पर्याप्त प्रवीणता प्राप्त हुई है । आप साहित्य सम्मेलन के बहुत देर तक मन्त्री भी रह चुके हैं । बालकों और युवकों के लिए भी आपने सत्साहित्य का निर्माण किया है । आज कल आप एक बाल पत्रिका का इलाहबाद में सम्पादन कर रहे हैं। आप से अब भी हिन्दी को बहुत आशाएं हैं ।

इस जीवन के घन-बन में

जब मैं अति विकल खड़ा था
इस जीवन के घन-बन में
अगम अपार चतुर्दिक तम था।
न थीं दिशाएँ, केवल भ्रम था।
साथी एक निरंतर श्रम था।
या था पथ निर्जन में
इस जीवन के घन-बन में।
आकर कौन हँस गया तम में?
अमित मिठास भर गया श्रम में।
पथ है किंतु प्रकाश भर उठा
एक-एक रज-कन में।
इस जीवन के घन-बन में।

कर्म-महात्म्य

१

यह संसार मनुष्य के लिए एक परीक्षा-स्थल है।
दुख हैं प्रश्न कठोर, देख कर होती बुद्धि विकल है।
किन्तु स्वात्म-बल विज्ञ सत्पुरुष ठीक पहुँच अटकल से।
हल करते हैं प्रश्न सहज में अविरल मेधा-बल से॥

२

दुख में बन्धु, वैद्य पीड़ा में, साथी घोर विपद में।
दुसह दीनता में आश्रय, उत्साह निराशा-नद में।
भ्रम में ज्योति, सुमति सम्पति में, दृढ़ निश्चय संशय में।
छल में शान्ति, न्याय प्रभुता में, अटल धैर्य बन भय में।

३

जनता के विश्वास कर्म मन ध्यान श्रवण भाषण में।
बास करो, आदर्श बनो विजयी हो जीवन-रण में।
अति अशान्त दुखपूर्ण विशृङ्खल क्रान्ति-उपासक जग में।
रखना अपनी आत्म-शक्ति पर दृढ़ निश्चय प्रति पग में।

४

जग की विषम आँधियों के झोंके सम्मुख हो सहना।
स्थिर उद्देश्य-समान और विश्वास-सदृश दृढ़ रहना।
जाग्रत नित रहना उदारता तुल्य असीम हृदय में।
अन्धकार में शान्त चन्द्र सा ध्रुवसा निश्चल भय में॥

५

सदा लोक-सौन्दर्य-वृद्धि की कवि-सम चिन्ता करना।
मत-दुख-सुख-विकार-वश होना प्रतिभा से पद धरना।
जो कहते हो जगत महामाया है, भीषण भ्रम है।
इस विचार में तुम को ही धोखा है, भ्रान्ति विषम है॥

६

पैदा कर जिस देश जाति ने तुमको पाला पोसा।
किये हुए है वह निज हित का, तुम से बड़ा भरोसा।
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्त्तव्य तुम्हारा।
फिर दे सकते हो वसुधा को शेष स्वजीवन सारा॥

७

फिर कहता हूं, डरो न दुख से कर्म-मार्ग सम्मुख है।
प्रेमपन्थ है कठिन, यहाँ दुख ही प्रेमी का सुख है।
कर्म तुम्हारा धर्म अटल हो कर्म तुम्हारी भाषा।
हो सकर्म मृत्यु ही तुम्हारे जीवन की अभिलाषा॥

जयशंकर प्रसाद

(जन्म सम्वत् १९४६–मृत्यु १९९५)



प्रसाद जी काशी के प्रसिद्ध "सुंघुनीसाह" के वंशज थे । आप की शिक्षा घर पर ही हुई । संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी का आप को अच्छा परिचय था । बौद्ध कालीन इतिहास के आप साकार प्रमाण थे । आप कवि, दार्शनिक, पण्डित, इतिहासज्ञ, कलाकार, नाटककार, उपन्यासकार आख्यायिकाकार और गीतिकार सभी कुछ थे । आप युगान्तरकारी कवि थे । आधुनिक रहस्यवादी कविताओं के प्रणेता आप ही हैं । आप की कविता गम्भीर, मधुर, मर्मस्पर्शिनी और रहस्यपूर्ण है । आपकी शब्दावलियाँ क्लिष्ट किन्तु मीठी हैं । आप भिन्न तुकान्त रचना के भी आदि प्रवर्त्तक हैं । सुकोमल कल्पना और उत्कृष्ट भाव आप के निजी गुण हैं । प्रारम्भ में ब्रजभाषा की कविताएं भी लिखी थीं । आप का श्रेष्ठतम और अन्तिम महाकाव्य 'कामायनी' है जिस पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हो चुका है । यह काव्य संसार की महान रचनाओं में से एक है । आप ने चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, जन्मेजय का नाग-यज्ञ, तितली, कंकाल, झरना, आँसू आदि तीस-पैंतीस ग्रन्थ लिखे हैं ।

अरी वरुणा की शांत कछार

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

सतत व्याकुलता के विश्राम, अरे ऋषियों के कानन कुंज !
जगत्-नश्वरता के लघु त्राण, लता, पादप, सुमनों के पुंज !
तुम्हारी कुटियों में चुपचाप, चल रहा था उज्ज्वल व्यापार,
स्वर्ग की वसुधा से शुचि संधि, गूँजता था जिससे संसार !

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

तुम्हारे कुंजों में तल्लीन, दर्शनों के होते थे वाद,
देवताओं के प्रादुर्भाव, स्वर्ग के स्वप्नों के संवाद !
स्निग्ध तरु की छाया में बैठ, परिषदें करती थीं सुविचार—
भाग कितना लेगा मस्तिष्क, हृदय का कितना है अधिकार ?

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

छोड़ कर पार्थिव भोग-विभूति, प्रेयसी का दुर्लभ वह प्यार,
पिता का वक्ष भरा वात्सल्य, पुत्र का शैशव-सुलभ दुलार !

दुःख का करके सत्य निदान, प्राणियों का करने उद्धार !
सुनाने आरण्यक संवाद तथागत आया तेरे द्वार !

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

मुक्ति-जल की वह शीतल बाढ़, जगत् की ज्वाला करती शांत।
तिमिर का हरने को दुख-भार, तेज अमिताभ, अलौकिक कांत !
देव-कर से पीडित विक्षुब्ध प्राणियों से कह उठा पुकार—
तोड़ सकते हो तुम भवबंध तुम्हें है यह पूरा अधिकार।

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो सुमित सुधार,
दुःख का समुदय उसका नाश, तुम्हारे कर्मों का व्यापार !
विश्व-मानवता का जय-घोष, यहीं पर हुआ जलद स्वर-मंद्र,
मिला था वह पावन आदेश, आज भी साक्षी हैं रवि-चंद्र ?

अरी वरुणा की शांत कछार !
तपस्वी के विराग की प्यार !

अशोक की चिंता

जलता है यह जीवन-पतंग।
जीवन कितना अति लघुक्षण,
ये शलभ पुञ्ज से कण-कण,
तृष्णा वह अनल शिखा बन—
दिखलाती रक्तिम यौवन।
जलने की क्यों न उठे उमंग?
है ऊंचा आज मगध-शिर—
पदतल विजित पड़ा गिर,
दूरागत क्रन्दन-ध्वनि फिर
क्यों गूंज रही है अस्थिर—
कर विजयी का अभिमान भंग?
इन प्यासी तलवारों से,
इनकी पैनी धारों से,
निर्दयता की मारों से,
उन हिंसक हुङ्कारों से,
नत-मस्तक आज हुआ कलिंग।

यह सुख कैसा शासन का ?
शासन रे मानव मन का !
गिरि-भार बना रे तिनका,
यह घटाटोप दो दिन का—
फिर रवि शशि किरणों का प्रसंग।

यह महा दम्भ का दानव—
पी कर अनंग का आसव—
कर चुका महा भीषण रव,
सुख दे प्राणी को मानव—
तज विजय-पराजय का कुढंग।

संकेत कौन दिखलाती,
मुकुटों को सहज गिराती,
जयमाला सूखी जाती,
नश्वरता गीत सुनाती,
तब नहीं थिरकते हैं तुरंग।

जब पल भर का है मिलना,
फिर चिर वियोग में झिलना,
एक ही प्रात है खिलना,
फिर सूख धूल में मिलना,
तब क्यों चटकीला सुमन-रंग ?

संसृति के विक्षत पग रे,
यह चलती है डगमग रे,
अनुलेप सदृश तू लग रे,
मृदु दल बिखेर इस मग रे,
कर चुके मधुर मधु पान भृङ्ग।

माखनलाल चतुर्वेदी

जन्म सम्वत—१९४४



'भारतीय आत्मा' के नाम से प्रसिद्ध चतुर्वेदी जी वास्तव में भारत की आत्मा हैं। आपका जन्म स्थान मध्यप्रदेश के होशंगाबाद ज़िले में है। पहले पहल आप एक ग्राम में अध्यापक थे। आजकल हिंदी के दृढ़ स्तम्भों में से हैं। इस समय आप कर्मवीर के संपादक हैं, राष्ट्रीय संसार में में भी आपका काफ़ी सम्मान है। आपकी कविताएं राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत, हृदयस्पर्शी और व्यंजनाशक्ति लिए होती हैं। इसलिए कहीं कहीं इनकी मनोनीत भावनाओं का अभिव्यंजन पाठकों पर प्रासादिकता का प्रभाव नहीं डालता। गहराई में जाते ही हमें वे मुग्ध कर देते हैं। आपकी कविता तारल्य-तरंगिनी की भाँति ज़ोरों से प्रवाहित होती रहती है। आपका कविता संग्रह अभी तक कोई नहीं निकला है। गद्य भाषण में भी आप सिद्धहस्त हैं। आपकी एक कृति 'साहित्य-देवता' है जिसे प्रकाशित करने में चतुर्वेदी जी ने अपने आपको बहुत सिकोड़ा है—यदि वही रचना हिन्दी संसार के समक्ष आवे तो यह गर्व से कहा जा सकता है कि वह साहित्य की चिरन्तन अमर देन होगी। चतुर्वेदी जी निसन्देह एक नैसर्गिक कलाकार हैं।

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं मैं सुर-बाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं, प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ,
चाह नहीं सम्राटों के शव पर हे हरि ! डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के शिर पर चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊँ,
मुझे तोड़ लेना बनमाली !
उस पथ में देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने,
जिस पथ जावें वीर अनेक ॥

कोकिल बोलो तो

क्या गाती हो, क्यों रह-रह जाती हो—कोकिल; बोलो तो ?
क्या लाती हो, संदेशा किसका है—कोकिल, बोलो तो ?
ऊँची काली दीवारों के घेरे में,
डाकू, चोरों, बटमारों के डेरे में,
जीने को देते नहीं पेट भर खाना,
मरने भी देते नहीं—तड़प रह जाना,

जीवन पर दिन रात कड़ा पहरा है,
शासन है या तम का प्रभाव गहरा है,
हिमकर निराश कर गया रात भी काली,
इस समय कालिमामयी जगी क्यों आली ?
क्यूँ हूक पड़ी ? वेदना—बोझवाली सी—कोकिल, बोलो तो ?
क्या लुटा?मृदुल वैभव की रखवाली सी—कोकिल, बोलो तो ?

बंदी सोते हैं, है घर घर श्वासों का,
दिनके दुख का रोना है निश्वासों का,
अथवा स्वर है—लोहे के दरवाजों का,
बूटों का या संतरी की आवाज़ों का,
या करते गिनने वाले हा-हा-कार,
सारी रातों हैं—एक, दो, तीन, चार !

मेरे आँसू की भरी उभय जब प्याली,
बेसुरा !-(मधुर) क्यों गाने आई आली ?
क्या हुई बावली, अर्द्धरात्रि को चीखीं—कोकिल बोलो तो ?
किस दावानल की ज्वालाएं हैं दीखीं—कोकिल, बोलो तो ?

निज मधुराई को कारागृह पर छाने,
जी के घावों पर तरलामृत बरसाने,
या वायु-विटप वल्लरी चीर हठ ठाने,
दीवार चीरकर अपना स्वर अज़माने,
या लेने आई मम आँखों का पानी,
नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी !

खा अँधकार करते वे जग-रखवाली,
क्या उनकी आभा तुझे न भाई आली?
तुम रवि किरणों से खेल जगत को रोज जगाने वाली—
कोकिल, बोलो तो?
क्यों अर्द्ध रात्रि में विश्व जगाने आई हो मतवाली—
कोकिल, बोलो तो ?
दूबों के आँसू धोती, रवि-किरणों पर,
मोती बिखराते विंध्या के झरनों पर,
ऊँचे उठने के व्रतधारी इस बन पर,
ब्रह्मांड कँपाते उस उद्दंड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा,
मैंने प्रकाश में लिखा सजीला देखा,
अब सर्वनाश करती क्यों हो ? तुम जाने या बे-जाने—
कोकिल, बोलो तो ?
क्या तमोरात्रि पर विवश हुई लिखने मधुरीली तानें—
कोकिल, बोलो तो ?
क्या देख न सकती जँजीरों का पहना ?
हथकड़ियां क्यों?यह पारतंत्र्य का गहना!
गिट्टी पर ? अँगुलियों ने लिक्खे गान !
कोल्हू का चरखा चूं ?—जीवन की तान।
हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूँआ,
खाली करता हूँ नृपति पेट का कूँआ।
दिन में मत करुणा जगे, रुलाने वाली,

इसलिए रात में गजब ढा रही आली ?
इस शांत समय में अंधकार भेद रो रही क्यों हो—
कोकिल, बोलो तो ?
चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज इस भाँति बो रही क्यों हो—
कोकिल, बोलो तो ?

त्याग का आदर्श

मत व्यर्थ पुकारे शूल-शूल
कह फूल-फूल, सह फूल-फूल।
हरि को हीतल में बन्द किये,
केहरि से कह नख हूल-हूल।
कागों का सुन कर्त्तव्य-राग,
कोकिल-काकिल को भूल-भूल।
सुरपुर ठुकरा, आराध्य कहे,
तो चल रौरव के कूल-कूल।
भू-खण्ड बिछा, आकाश ओढ़,
नयनोदक ले, मोदक प्रहार।
ब्रह्माण्ड हथेली पर उछाल,
अपने जीवन धन को निहार।

———

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

[जन्म सम्वत—१९५३]



निराला जी का जन्म महिषादल स्टेट बंगाल में हुआ था। पहले पहल आप बंगला में ही कविता करते थे। इसलिए इनकी हिन्दी कविताओं पर बंगला का काफ़ी प्रभाव है। हिन्दी में मुक्तक छन्दों के निर्माता आप ही हैं। आपने भावों और भावनाओं को ही प्रधानता दी है। छन्द और भाषा मनमानी है। फिर भी भाषा के अन्दर इतना मार्मिक ओज और गम्भीरता है कि छन्द की उच्छृङ्खलता ज़रा भी नहीं खटकती। आप सुलझे हुए दार्शनिक हैं। छायावादी कवियों के नेताओं में आपकी गिनती की जाती है। आप रहस्यवादी और गम्भीरतावादी कवि हैं। आप बंगला और अंगरेज़ी के गहरे विद्वान हैं। आप एक मँजे हुए समालोचक भी हैं। आपकी तुलसीदास, अनामिका, परिमल आदि रचनाएं हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधियां हैं। आपने एक दो उपन्यास लिखे हैं जिनका साहित्यिक दृष्टि से पर्याप्त ऊँचा स्थान है, यद्यपि उनमें उपन्यास कला का पूर्ण विकास नहीं हो पाया। आजकल आप इलाहाबाद में हिन्दी सेवा कर रहे हैं। आपसे आगे चलकर हिन्दी साहित्य बहुत कुछ लेगा ऐसी आशा है।

वृत्ति

देख चुका जो-जो आये थे
चले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए !

क्षण-भर की भाषा में
नव-नव अभिलाषा में,
आए थे जो निष्ठुर कर से
मले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए !

चिंताएँ बाधाएँ
आती ही हैं, आएँ,
अंध हृदय है, बंधन निर्दय लाएँ
मैं ही क्या, सब ही तो ऐसे
छले गए,
मेरे प्रिय सब बुरे गए, सब
भले गए !

तुम और मैं

तुम तुंग हिमालय शृंग,
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता ।
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी कविता ॥

तुम प्रेम और मैं शांति ।
तुम सुरापान घन-अंधकार
मैं हूँ मतवाली भ्रांति ।

तुम दिन-कर के खर-किरण-जाल,
मैं सरसिज की मुसकान ।
तुम वर्षों के बीते वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान ॥

तुम योग और मैं सिद्धि ।
तुम हो रागानुग निश्छल तप,
मैं शुचिता सरल समृद्धि ।

तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरंजिनी भाषा ।
तुम नंदन-वन-घन-विटप,
और मैं सुख-शीतल-तरु-शाखा ॥

तुम प्राण और मैं काया
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया ।

तुम पथिक दूर के श्रांत
और मैं बाट जोहती आशा।
तुम भवसागर दुस्तार,
पार जाने की मैं अभिलाषा॥

तुम नभ हो मैं नीलिमा,
तुम शरद-सुधाकर कला-हास,
मैं हूँ निशीथ मधुरिमा।

तुम गंध-कुसुम कोमल पराग,
मैं मृदु-गति मलय-समीर।
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त-पुरुष,
मैं प्रकृति-प्रेम-जंजीर॥

तुम शिव हो मैं हूं शक्ति
तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र,
मैं सीता अचला भक्ति॥

तुम रण-तांडव-उन्माद-नृत्य,
मैं युवति-मधुर-नूपर-ध्वनि।
तुम नाद वेद ओंकार सार,
मैं कवि शृंगार-शिरोमणि।

तुम यश हो मैं हूं प्राप्ति,
तुम कुंद-इंदु-अरविंद शुभ्र
तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति॥

सुमित्रानन्दन पन्त

[जन्म सम्वत— १९५७]



पन्तजी का जन्म कैसानी ज़िला अल्मोड़ा में हुआ था। आप युगांतरकारी कवि हैं। आप 'नवीन हिन्दी कविता' कहे जायं तो ज़रा भी अत्युक्ति नहीं होगी। आप छायावाद के प्रमुख स्तम्भों में से हैं। पर्वतवासी होने के कारण आप पर प्रकृति का पूरा प्रभाव पड़ा। इसी प्रभाव ने हमारे साहित्य को एक निरुपम प्रकृतिवादी कवि दिया। पन्त जी की प्रकृतिपूजक कविताएं जिन जिन शब्दों के कलरव से अलकृंत होकर अपनी झांकी दिखाती हैं साहित्य प्रेमी अवाक से उन्हें देखते ही रह जाते हैं। सुकुमार भावनाएं, निर्झर सी शब्दावलियाँ, मनोहर कल्पना, ऊंची दार्शनिकता और तरल प्रवाह पन्त जी की अपनी बात है और ये इसमें परम सीमा तक पहुंच गए हैं। हाँ कहीं कहीं शब्दों के फेर में पड़कर भाव पिछड़ ज़रूर जाते हैं। आपने तुकांत, अतुकांत मुक्तक सभी प्रकार की चीजें लिखी हैं।

ग्रन्थि, वीणा, पल्लव, गुञ्जन, ग्राम्या, युगान्तर और पल्लविनी आदि आपकी रचनाएं हिन्दी संसार की सुन्दरतम चीज़ों में से हैं।

मौन-निमन्त्रण

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार,
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार,
विचरते हैं जब स्वप्न-अजान,

न जाने, नक्षत्रों से कौन,
निमन्त्रण देता मुझको मौन ?

सघन-मेघों का भीमाकाश,
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस-धार,

न जाने, तपक तड़ित में कौन !
मुझे इंगित करता तब मौन !

देख वसुधा का यौवन-भार,
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर-उर के-से मृदु उद्गार,
कुसुम जब खिल पड़ते सोच्छवास,

न जाने, सौरभ के मिस कौन,
सँदेशा मुझे भेजता मौन !

क्षुब्ध-जल-शिखरों को जब वात,
सिन्धु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल-संसार,
बना बिथुरा देता अज्ञात,

उठा तब लहरों से कर कौन,
न जाने मुझे बुलाता मौन !

स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर,
विश्व को देती हैं जब बोर,
विहग-कुल की कल कण्ठ-हिलोर,
मिला देती भू-नभ के छोर,

न जाने, अलस-पलक-दल कौन,
खोल देता तब मेरे मौन ।

तुमुल-तम में जब एकाकार,
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर-कुल की झनकार,
कँपा देती तन्द्रा के तार,

न जाने, खद्योतों से कौन !
मुझे पथ दिखलाता तब मौन !

न जाने कौन, अये द्युतिमान !
जान मुझको अबोध अज्ञान ।

सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान ॥

अहे सुख-दुख के सहचर मौन !
नहीं कह सकती तुम हो कौन !

परिवर्तन

अहे निष्ठुर-परिवर्तन !
तुम्हारा ही तांडव-नर्तन
विश्व का करुण-विवर्तन !
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन
निखिल उत्थान पतन !
अहे वासुकि सहस्र-फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षस्थल पर !
शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे है घनाकार जगती का अंबर !
अखिल विश्व ही विवर
वक्र-कुन्डल
दिङ्मंडल
अहे दुर्जेय-विश्वजित् !
नवाते शत सुरवर, नरनाथ
तुम्हारे इन्द्रासन तल माथ

घूमते शत-शत भाग्य अनाथ,
सतत रथ के चक्रों के साथ!

तुम नृशंस-नृप-से जगती पर चढ़ अनियंत्रित,
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद्-मर्दित,
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमाएँ खंडित,
हर लेते हो विभव, कला, कौशल चिर-संचित!
आधि, व्याधि, बहु-वृष्टि, वात, उत्पात, अमंगल,
वह्नि, बाढ़, भूकंप,—तुम्हारे विपुल सैन्य-दल,
अहे निरंकुश! पदाघात से जिनके विह्वल

हिल हिल उठता है टल मल
पद्-दलित धरा-तल।

जगत् का अविरत हृत्कंपन
तुम्हारा ही भय-सूचन,
निखिल-पलकों का मौन-पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण!

विपुल-वासना-विकच विश्व का मानस-शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल-कृमि से घुस पल-पल
तुम्हीं स्वेद-सिंचित संसृति के स्वर्ण-शस्य-दल
दलमल देते वर्षोपल बन, वाञ्छित कृषिफल

नैश गगन सा सकल
तुम्हारा ही समाधि-स्थल।

महादेवी वर्मा

(जन्म सम्वत—१९६४)



श्रीमती वर्मा फ़र्रुखाबाद की रहने वाली हैं। आपकी करुणा और व्यथा पूर्ण कविता छायावादी भावों के साथ बहुत ही मर्मस्पर्शी और हृदय-ग्राही बन गई है। आप के वेदना-पीड़ित उद्गार अत्यन्त ही अनुभूति पूर्ण हैं। पिछले दिनों आप ने दुख में भी सुख का अनुभव किया और अभाव को भी मंगल रूप में देखा। आपकी रचना बहुत सुन्दर, सरस, और प्रवाह लिए हुए हैं। आपकी रचना पर कुछ अंग्रेज़ी शैली का भी प्रभाव है।

रश्मि, नीहार, नीरजा, सांध्य-गीत आदि आपकी प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। आपको ५००) का सेकसेरिया पुरस्कार भी मिल चुका है। आज कल आप इलाहाबाद में रहती हैं। दुःख और निराशा पूर्ण कविताओं में आपको अप्रतिम सफलता प्राप्त हुई है।

बीन भी हूँ........

बीन भी हूँ मैं तुम्हारी, रागिनी भी हूं !

नींद थी मेरी अचल निस्पन्द कण कण में,
प्रथम जागृति थी जगत के प्रथम स्पन्दन में;
प्रलय में मेरा पता, पदचिन्ह जीवन में;
शाप हूँ, जो बन गया वरदान बन्धन में;
कूल भी हूँ कूलहीन प्रवाहिनी भी हूं !

नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ;
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ;
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ;
एक हो कर दूर तन से छांह वह चल हूँ;
दूर तुम से हूं अखण्ड सुहागिनी भी हूँ !

आग हूँ जिसके ढुलकते बिन्दु हिमजल के;
शून्य हूं जिसको बिछे हैं पाँवड़े पल के;
पुलक हूँ वह जो पला है कठिन प्रस्तर में;
हूँ वही प्रतिबिम्ब जो आधार के उर में;
नील घन भी हूँ सुनहली दामिनी भी हूं !
नाश भी हूं मैं, अनन्त विकास का क्रम भी;
त्याग का दिन भी, चरम आसक्ति का तम भी;
तार भी, आघात भी, झङ्कार की गति भी;
पात्र भी, मधु भी, मधुप भी, मधुर विस्मृति भी;
अधर भी हूं और स्मित की चाँदनी भी हूँ !

— —

तुम मुझ में....

तुम मुझ में प्रिय ! फिर परिचय क्या !
तारक में छवि प्राणों में स्मृति;
पलकों में नीरव पद की गति;
लघु उर में पुलकों की संसृति;
भर लाई हूं तेरी चञ्चल
और करूं जगमें सञ्चय क्या ?
तेरा मुख सहास अरुणोदय;
परछाईं रजनी विषादमय;
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय;

खेल खेल थक थक सोने दो
मैं समझूंगी सृष्टि प्रलय क्या !

रोम रोम में नन्दन पुलकित;
साँस साँस में जीवन शत शत;
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित;

मुझ में नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या; निष्क्रय लय क्या !

हारूं तो खोऊं अपनापन;
पाऊं प्रियतम में निर्वासन;
जो न बनूं तेरा ही बन्धन;

भर लाऊं सीपी में सागर
प्रिय ! मेरी अब हार विजय क्या ?

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

(जन्म संवत् १९५४)



नवीन जी बड़े ही अलमस्त जीव हैं। इनका जन्म ग्वालियर राज्य के शाजापुर नामक कसबे में हुआ है। ये एंट्रेंस पास करने के बाद संयुक्त प्रांत के प्रसिद्ध नेता—'प्रताप'-संपादक स्व. श्री गणेश शंकर विद्यार्थी के सम्पर्क में आए।

विद्यार्थी जी ने इन्हें कवि के साथ राष्ट्रीय कार्य-कर्त्ता भी बनाया। यह बड़े प्रतिभा शाली कवि, निबंध-लेखक, और वक्ता हैं। इनकी अनेक कविताओं में प्रेम और सौंदर्य की अनुभूति भी है, तो अनेक कविताओं में राष्ट्रीयता की उग्र भावनाएं भी। अनेक कविताओं में ऊँचे अध्यात्यिक भाव भी हैं।

इनके भाव, भाषा और शैली में सरसता, प्रवाह और ओज है। इनकी कविताओं का संग्रह कुंकुम नाम से छपा है।

रुन-झुन-झुन

रुन-झुन-झुन रुनुन झुनुन रुनुन झुनुन ।
मेरे लालन की पांजनियाँ
खनक रहीं मेरी आँगनियाँ;
औचक आकर धीरे-धीरे
सुन ले तू मेरी साजनियाँ
ना जानूँ कैसे पाया है यह धन अरी पड़ोसिन सुन ।
रुन-झुन-झुन रुनुन झुनुन रुनुन झुनुन ॥

पाँजनियों की खन-खन से तन-मन में उठती झंकृतियां ।
ठगी ठगी-सी रह जाती हूँ लख-लख चरण अलंकृतियाँ ।
लल्ला उठ उठकर गिरता है
धूल-भरा हँसता फिरता है,
लालन की इस अस्थिरता में
थिरक रही जग की स्थिरता है ।

आज विश्व की शैशवता मम आंगन आई बन निरगुन।
रुन-भुन-भुन रुनुन भुनुन रुनुन भुनुन ॥

किलका मेरा लाल कि मेरे हिय में हुआ उजेला-सा;
रोया ज़रा विश्व हो गया कि मेरे लिए अकेला-सा।

आंसू-कण बरसाते आना,
लार-तार टपकाते जाना,
मेरे घर आँगन में आली,
रुदन-हास्य का भरा खज़ाना,

मेरे स्मरण-गगन में गूंज रही है इसकी छुन-छुन-छुन
रुन-भुन-भुन रुनुन भुनुन रुनुन भुनुन ॥

बड़ी भाग्यशालिनी बनी मैं, हिय हुलास, मन मस्त हुआ
मेरा अपनापन मेरे नन्हें स्वरूप में व्यस्त हुआ।

व्यस्त हुआ अस्तित्व अलग-सा
वह मिट गया स्वप्न के जग-सा,
आली लुट गई री मैं जब से
आया है यह कोई ठग-सा,

मुझे लूट ले चला किलकता मेरा छोटा-सा चुन मुन।
रुन-भुन-भुन रुनुन भुनुन रुनुन भुनुन ॥

अपनापन खोकर पाया है मैंने अपना रूप नया,
उसे गोद में लेकर मेरा हुआ स्वरूप अनूप नया।

एक हाथ में अभिलाषा को,
दूजे में सारी आशा को
बाँध मुट्ठियों में वह डोले
करता सफल मातृभाषा को
मा-मा मुख से कहता है, पाँजनियों से बजता टुन टुन।
रुन-झुन-झुन रुनुन झुनुन रुनुन झुनुन ॥

आज विश्व-शैशव अपनी गोदी में खिला रही हूँ मैं,
सुविगत वर्तमान मधुरस भावी को पिला रही हूँ मैं।
शत शत संस्कारों की धारा
मेरे स्तन से बही दुधारा,
बन कर पयस्विनी करती हूँ
मैं भविष्य-निर्माण दुलारा।
मेरे शिशु में प्रगटी मानवता की रुचिर पुरातन धुन।
रुन-झुन-झुन रुनुन झुनुन रुनुन झुनुन ॥

———

जगन्नाथप्रसाद मिलिंद

[जन्म सम्वत् १९६४]



इस युग के उत्कृष्ट कवियों में मिलिंद जी का बहुत ऊंचा स्थान है। इनका जन्म ग्वालियर राज्य के मुरार नामक स्थान में हुआ है। बचपन से इन्होंने राष्ट्रीय विद्यालयों में शिक्षा पाई और राष्ट्रीय वातावरण में पले। इसी कारण इनके विचारों में ओज, प्रांजलता, संयम, सात्विकता, आध्यात्यिकता तथा राष्ट्रीयता के दर्शन मिलते हैं। इनकी भाषा भी मँजी हुई होती है।

इन्हें भारत के विभिन्न प्रांतो में जैसे राजस्थान, संयुक्त प्रांत, महाराष्ट्र, बंगाल और मध्यभारत में रहने का तथा अनेक प्रांतीय भाषाओं का साहित्य पढ़ने का अवसर मिला है इस कारण इनमें भारतीय संस्कृति का अच्छा सामंजस्य है। स्वर्गीय रवीन्द्रनाथ ठाकुर की विश्व-भारती में यह हिन्दी के प्रोफेसर के रूप में कार्य करते रहे हैं।

इनकी कविताओं का एक संग्रह जीवन-संगीत के नाम से प्रकाशित हुआ है। इनका प्रताप-प्रतिज्ञा नाटक हिंदी-नाटक-जगत की एक अमूल्य सम्पत्ति है।

आजकल इनका जीवन राष्ट्रीय कार्यों में लगा हुआ है।

अनुरोध

जीवन-पथ की अमिट अमावस
बने निमिष में स्वर्ग समान;
बिखरा दो उदार अधरों से
किरणों की उज्ज्वल मुसकान

एक अनिंद्य रूप की ज्वाला,
देवि, जला दो त्रिभुवन में,
जिसमें अशिव, असत्य, असुन्दर,
हो सब भस्म एक क्षण में।

रँग दो मेरे स्वप्न, सजनि, सब
जीवन मरण अरुण करदो—
जन्म-जन्म का शून्य पात्र यह
आज बूंद भर में भर दो।

कुछ का कुछ

घर-घर गाने चली भक्ति जब
गिरि की दृढ़ता का गुणगान,
उसी रात, उर चीर, प्रेम की
गंगा फूट पड़ी गतिमान,

गायक झुँझला जाता है,
हाय, युगों के संयत ! क्यों तू
पल भर में बह जाता है।

लिखा महानद - महासिंधु के
महामिलन का ज्योंही गान,
टेढ़ी - मेढ़ी निकल पंक्तियाँ
विरह-गीत बन गईं अजान।

कवि कुण्ठित हो जाता है,
ऐ आनन्द, वेदना में क्यों
तू लय होता जाता है ?

अङ्कित करने चली तूलिका
ज्योंही विस्तृत नील गगन
किसी नयन का लघु तारा
खिंच गया चित्रपट पर तत्क्षण

चित्रकार चकराता है।
ऐ असीम, क्यों तू सीमा में
प्रतिपल बँधता जाता है।

जीवन-दीप

जिसकी एक झलक पातीं तो
रवि-शशि की पलकें झुक जातीं,
पूर्ण पयोनिधि की मादकता
मधु की दो लघु बूँदें पातीं।

बिखरी वीणाएँ अंबर में
महामिलन का स्वर भर आतीं,
एक-एक शतदल के उर में
लाख-लाख आँखें खुल जातीं,

वही प्रकाश, इसी में छिप कर,
चुपके से जब देते हो भर,
मेरा लघुतम जीवन-दीपक
कह उठता है विस्मित हो कर—

क्या इसलिए कि फैला दूँ मैं
कण-कण में प्रकाश की प्यास,
लघुतम स्नेह-पात्र में, प्रियतम,
भर देते हो परम प्रकाश।

———

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

[जन्म सम्वत--१९६४]



प्रेमी जी का जन्मस्थान ग्वालियर का गुना नामक कसबा है। प्रेमी जी नैसर्गिक कवि हैं। इनकी प्रतिभा शैशव से कविता की ओर झुकी और परिणाम-स्वरूप किशोरावस्था में ही 'आंखों में' जैसी एक सुन्दर रचना का दर्शन हुआ। इनकी रचनाएं करुणा और वेदना का भार वहन किए हुए आईं और क्रमशः इन्होंने साहित्य को हर प्रकार की सुन्दर और मार्मिक निधियाँ अर्पित कीं। 'अनन्त के पथ पर' प्रेमी की वह रचना है जो रहस्यवाद के श्रेष्ठतम काव्यों में रखी जा सकती है। 'जादूगरनी' पुस्तक में छायावादी भावों का कोमल और गम्भीर अभिव्यञ्जन किया गया है। आपकी कविता अनुभूति प्रधान और प्रसाद गुणपूर्ण होती है। आजकल प्रणय-वेणु का वाहक प्रेमी विप्लव की चिनगारियाँ उड़ाता नज़र आया है। 'अग्निगान' ऐसी ही एक रचना है। इन्होंने हाल में ही एक और कविता संग्रह निकलवाया है जिसका नाम 'प्रतिमा' है।

नाट्यकारों में इनका सानी नहीं। रामचन्द्र शुक्ल ने प्रसाद जी से प्रेमी जी को कुछ अंश में अच्छा बताया है। स्वर्णविहान, रक्षाबन्धन, पाताल विजय, शिवा साधना, प्रतिशोध, आहुति, स्वप्नभंग, छाया और बन्धन इनके नाटक हैं। 'रक्षा बन्धन' पर इनको मानसिंह पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। इनसे हिंदी साहित्य को बहुत आशायें हैं।

अमर ज्योति

१

मुझे होलिका चली जलाने, स्वयं भस्म हो गई अभागिन।
स्वयं काल का ग्रास बन गई मुझको खाने वाली बाघिन।
जिस दिन जगत् मारने मुझको भरकर लाया विष का प्याला।
उस दिन मुझमें अमर ज्योति बन झूम उठा जीवन मतवाला।

अमर अनल-पक्षी हूं मैं तो,
मुझको मरने का क्या भय है?
मेरी राख जी उठी फिर से,
होता जग को क्यों विस्मय है?

२

मेरी आंखें चमक रही हैं नभ-के नक्षत्रों में जग-मग।
गाड़ रहा है मेरी आँखों में क्यों तप्त शलाखाएँ जग।

मेरी काया की रग, जग की राहों की बिखरी रेखाएँ।
मेरे पथ के दीपक को क्यों व्यर्थ बुझाने चली हवाएँ।

अँधकार को मैंने अपने
ऊपर ओढ़ लिया चादर सा।
मेरे लिए मरण का घर भी,
सुखकर जीवन-धनके घरसा।

३

मैंने अपने बीज बो रखे हैं भविष्य के मैदानों में।
मुझको कूट रहे हो क्या तुम अपने ओछे खलिहानों में।
मैंने बिठा लिया रवि-शशि को अपने अंबर से प्राणों में।
मुझ पर व्यर्थ चलाता है जग विष भर-भर तीखे बाणों में।

कोमल रोम बन गए जग के
शत-शत शर मेरी काया में।
जीता कब तक जुल्म बचेगा।
मेरे शासन की छाया में।

४

मेरे गीत बन रहे निर्झर, प्राण बह रहे हैं सागर में।
मुझको भरने को आए हो तुम ओछेपन की गागर में।
मेरा मौन मुखर हो उठता है भूकम्पों की हल-चल में।
मेरी क्षमा वज्र बन जाती प्रलयँकर जलदों के दल में।

ऊँचे-ऊँचे महल उठाते
हैं क्यों मेरे आगे मस्तक।
टिक सकता है गर्व किसी का
महा काल के आगे कब तक ?

५

बहते हैं मेरी छाती पर जगत् जहाज़ों से सकुचाते ?
मुझको मछली समझ फँसाने को तुम अपने जाल बिछाते।
मेरे प्राणों में तुम झांको, तुमसे कितने वहाँ सो गए।
विजय खोजने जो आए थे, विफल हो गए, स्वयँ खो गए।

मैंने लाद रखी युग-युग से,
अपने सर पर वसुधा सारी।
शेषनाग का फन काटेगा
जग के साहस की बलिहारी !

६

मैंने जान लिया है जीना, मरना, खिलना, फिर मुरझाना।
मेरे लिए एक हैं दोनों भैरव या विहाग का गाना।
जीवन और मरण दोनों हैं प्राणों के ताने बाने से।
मैं न रहूंगा दोनों में से, एक चीज़ के मिट जाने से।

तुम तलवार उठा कर आए,
मेरे सिर को आज उड़ाने।

किसने किरणों को काटा है,
किस पर आए शस्त्र चलाने ।

७

स्वागत शीश काटने वाले, स्वागत मुझे मिटाने वाले !
दे तलवार मुझे, मैं भर दूँ अपने ही लोहू से प्याले ।
मुझे जलाने को आए हो अपनी आग बुझाने वाले !
देखो, नभ में नव-जीवन पा हँसते शीश चढ़ाने वाले ।

दीपक से दीपक जलता है,
ज्योति अमर मां के मन्दिर की ।
तुम दीपक की ज्योति बढ़ा दो,
बत्ती काटो मेरे सिर की ।

याचना

हे प्रभु, हे प्रभु जीवन दो
आँधी आवे, बादल बरसे, बिजली कड़के !
भय-विह्वल हो सारे जग की छाती धड़के !
आशंकित हो ज़रा न फिर भी ऐसा मन दो ।
हे प्रभु, हे प्रभु जीवन दो !
लहरें लहरें, डगमग-डगमग नौका डोले !
उन लहरों में यम का पागल डमरू बोले !
रोकूँ नहीं नाव को ऐसी मुझे लगन दो ।
हे प्रभु, हे प्रभु जीवन दो !

रामकुमार वर्मा

[जन्म सम्वत--१६६२]



रामकुमार वर्मा का जन्म मध्यप्रदेश के सागर ज़िले के एक गाँव में हुआ है। ये बचपन से ही शिक्षा-क्षेत्र में पटु रहे हैं। कविता का शौक भी इन्हें बचपन से रहा है।

इन्होंने हिन्दी में एम-ए किया है और आजकल इलाहाबाद विश्व विद्यालय में हिन्दी के प्रोफेसर हैं।

आपकी कविताओं में अध्यात्मिक भावनाओं के साथ सरसता भी है। अनुभूति और कल्पना दोनों चीज़ों का सम्मिश्रण है। इनकी वीर हमीर, कुल-ललना, चित्तौड़ की चिता, रूप-राशि, शुजा, नूरजहां तथा निशीथ चित्र रेखा, और चंद्रकिरण नाम क कविता की पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इनके अतिरिक्त एक एकांकी नाटकों का संग्रह, कबीर का रहस्यवाद, और हिन्दी-साहित्य का समालोचनात्मक इतिहास और साहित्य-रचना नामकी पुस्तकें भी छपी हैं।

एक प्रश्न

घटा घुमड़ कर आई।
घोर घनी घहरी घिरकर भी
पूरी बरस न पाई!
नभ की रँगभूमि पर उसने
विद्युत में नर्तन कर,
हँसकर मुक्तावलि की माला
बून्द बून्द बरसाई!
उसे ज्ञात हो गया किन्तु,
मिथ्या है नभ में रहना,
इस पथ्वी पर गिरकर उसने
मेरी सी गति पाई।

शांति नहीं है इस बन्धन में
किसी भाँति रहकर भी,
आज घटा ने रो-रोकर यह
दारुण कथा सुनाई।
प्रभो अश्रु क्यों दिये आँख को
क्यों करुणा इस मन को,
सुलझाने के बदले तुमने
मेरी गति उलझाई।

अनुभूति

आज देख ली अपनी भूल।
सुन्दरता के चयन हेतु
तोड़े मुरझाने वाले फूल।
जिस जीवन में हूँ मैं अथ से,
निकल रहा सांसों के पथ से।
रात्रि-दिवस की श्याम-श्वेत गति,
समझ रहा हूँ मैं अनुकूल।
समय हँसा, सुख उसको जाना,
यह जग तो था एक बहाना।
ये ग्रह, ये नक्षत्र कुछ नहीं,
नभ में हँसती है कुछ धूल!
आज देख ली अपनी भूल।

चन्द्र–किरण

यह चन्द्र-किरण भू पर आई ।
साहस तो देखो नभवासिनि, पृथ्वी पर यह नव-छवि लाई ॥
एकाकीपन का लिए भार,
तम के प्रदेश को किया पार,
प्रतिक्षण विस्तृत हो रेख रूप,
कर दिया विमल तन तार-तार ।
मेरे दृग में खोकर उसने, बोलो, क्या जीवन-निधि पाई ॥
तज नक्षत्रों से पूर्ण लोक,
आलोक छोड़, निज ज्योति रोक,
मेरी पृथ्वी जो है मलीन,
जिसमें है पीड़ा रुदन शोक ।
उसमें आने के हेतु न जाने क्यों इतनी यह ललचाई !
यह चन्द्र-किरण भू पर आई ।

पंडित उदयशंकर भट्ट

[जन्म सम्वत—१९५५]



भट्ट जी का जन्म ज़िला बुलन्दशहर में हुआ है। सन १९१८ से आप हिन्दी में लेख और कविताएं लिखते रहे हैं, किन्तु नियमित रूप से १९२८ से लिखा है।

आप पर सस्कृत-साहित्य का बड़ा प्रभाव है, इसी कारण काव्यों और नाटकों की भाषा पहले जटिल होती थी। अब यह समय के प्रवाह के साथ साथ आ गए हैं।

आपकी रचनाओं में अध्यात्मिक भावनाएँ प्रचुरता से मिलती हैं। आप अनेक कविताओं में निराशावादी दिखाई देते हैं। साहित्यिक दुनिया में आपका अच्छा मान है।

आपके विर्सजन और राका नाम के दो कविता-संग्रह, तक्षशिला और मानसी नामक काव्य, और मत्स्यगधा विश्वामित्र और राधा नामक पद्य नाटक छपे हैं। गद्य में आपने कई नाटक लिखे हैं।

पथिक से

चल तू अपनी राह पथिक, चल, तुझको विजय-पराजय से क्या?

भँवर उठ रहे हैं सागर में,

मेघ घुमड़ते हैं अम्बर में,

आंधी औ' तूफान डगर में,

तुझको तो केवल चलना है, चलना ही है फिर हो भय क्या?

चल तू......

इस दुनियां में कहीं न सुख है,

इस दुनियां में कहीं न दुख है,

जीवन एक हवा का रुख है,

चल तू......

अरे, थक गया! फिर बढ़ता चल,

उठ, संघर्षों से अड़ता चल,

जीवन-विषम-पन्थ-बढ़ता चल,

अड़ा हिमालय हो यदि आगे 'चढ़ूँ कि लौटूँ' यह सँशय क्या ?

चल तू ··

कोई रो रोकर सब खोता,

कोई खोकर सुख से सोता,

दुनियां में ऐसा ही होता,

जीवन का क्रय मरण यहां पर, निश्चित ध्येय यदि फिर त्तय क्या ?

चल तू अपनी राह पथिक,

गीत

हो गया यह हास मेरा सब कहीं उपहास क्यों ?

मैं तिमिर में ढूंढ़ता हूँ हृदय का उल्लास क्यों ?

मुक्त तारक निचय ऊपर

खोजता क्या उतर भू पर

तू धरा का दीप बन जल, मांगता आकाश क्यों ?

हो गया यह हास ···

बून्द सा अधिकार मेरा

चमक लघु, पर गुरु अँधेरा

अँधेरे में ले रहा हूँ दामिनी की आश क्यों ?

हो गया यह हास ···

मैं हृदय की कह न पाया

ओस सा ढल बिखर आया

फेक पहिले दूर कोई फिर बुलाना पास क्यों ?

बन गया यह हास मेरा सब जगह उपहास क्यों ?

मेघ-गीत

आ गये घन मोतियों का हार ले,
नील नभ के हृदय में सब प्यास सावन की लिये वे,
जलन अपनी को बुझाने अश्रु से तर दिल किये वे,
किसी क्रन्दन के स्वरों से मूर्च्छनाएं राग की भर,
आग सी भर कर हृदय में स्वकर मुक्ता दल लिये वे,
आह भर भर गिर रहे हैं किसी प्रिय का प्यार ले।
आ गये घन आंसुओं का हार ले ॥१॥

सदा आंसू बन बहा दिल प्रेम पन्था में चले जो,
प्यार उनका जल उठा सब किसी रवि-मणि से मिले जो,
सदा अपनापन भुला चिनगारियों से उड़ रहे वे,
सदा सिरहाने खड़े पतझड़ हँसे उस पथ चले जो,
और जीवन में पराजित गर्जना सँसार ले।
आ गये घन आंसुओं का हार ले ॥२॥

रात अपनी आग की चिनगारियां लाई बुझाने,
और पहलू में उफनती सांस की मृदु तह बिठाने,
यह उसी की साध पानी हो गगन के अङ्क फैली,
रे, उसी की साध में कुछ शेष जीवन-क्षण सुलाने,
क्षणिक जीवन में अचानक द्वन्द्व पारावार ले।
आ गये घन मोतियों का हार ले ॥३॥

हरिवंश राय 'बच्चन'

[जन्म सम्वत—१६६५]



बच्चन जी का जन्म इलाहबाद में हुआ है। बच्चन जी का कवि-जीवन आर्य-समाज के भजनों का अनुकरण करने से प्रारम्भ हुआ था। कालेज-काल में इन्होंने कुछ कहानियां भी लिखी थीं।

बच्चन जी हिन्दी के नवीन कवियों में सबसे अधिक लोक-प्रिय हैं। इन्होंने उमर खैय्याम की रुबाइयात का हिन्दी अनुवाद किया, तथा मदिरा से सम्बन्ध रखने वाली 'मधुशाला' 'मधुबाला' और 'मधुकलश' नामकी कविता पुस्तकें लिखीं। बचनजी जब इन रचचाओं को अपने मधुरकण्ठ से सुनाते हैं तो स्रोता झूम उठते हैं। इनके निशा-निमन्त्रण और एकांत-सङ्गीत नाम से छोटे छोटे गीतों के संग्रह अभी प्रकाशित हुए हैं। इनमें इनकी कविता की धारा मदिरावाद से हट कर छायावाद की ओर बढ़ी है।

इनकी भावनाएँ सरल, और सरस भाषा स्पष्ट और मुहावरेदार है। प्रवाह इनकी कविताओं का विशेष गुण है।

कहते हैं तारे गाते हैं।

कहते हैं तारे गाते हैं!
सन्नाटा वसुधा पर छाया,
नभ में हमने कान लगाया,
फिर भी अगणित कंठों का यह राग नहीं सुन पाते हैं!
कहते हैं तारे गाते हैं!
स्वर्ग सुना करता यह गाना,
पृथ्वी ने तो बस यह जाना,
अगणित ओस-कणों में तारों के नीरव आँसू आते हैं!
कहते हैं तारे गाते हैं।
ऊपर देव, तले मानवगण,
नभ में दोनों गायन-रोदन,
राग सदा ऊपर को उठता, आँसू नीचे झर जाते हैं!
कहते हैं, तारे गाते हैं!

मैंने खेल किया जीवन से

मैंने खेल किया जीवन से !
सत्य भवन में मेरे आया,
पर मैं उसको देख न पाया,
दूर न कर पाया मैं, साथी, सपनों का उन्माद नयन से !
मैंने खेल किया जीवन से !
मिलता था बेमोल मुझे सुख,
पर मैंने उससे फेरा मुख
मैं खरीद बैठा पीड़ा को यौवन के चिरसंचित धन से !
मैंने खेल किया जीवन से !
थे बैठे भगवान हृदय में,
देर हुई मुझको निर्णय में,
उन्हें देवता समझा जो थे कुछ भी अधिक नहीं पाहन से।
मैंने खेल किया जीवन से।

मत निर्माण करो

अब मत मेरा निर्माण करो !
तुम ने न बना मुझको पाया,
युग युग बीते मैं घबराया,
भूलो मेरी विह्वलता को, निज लज्जा का तो ध्यान करो।

अब मत मेरा निर्माण करो।

इस चक्की पर खाते चक्कर
मेरा तन-मन-जीवन जर्जर,
हे कुम्भकार मेरी मिट्टी को और न अब हैरान करो।
अब मत मेरा निर्माण करो।

कहने की सीमा होती है,
सहने की सीमा होती है,
कुछ मेरे भी वश में, मेरा कुछ सोच समझ अपमान करो।
अब मत मेरा अपमान करो।

———

शब्दार्थ

कबीर

प्रचलित=चालू

अपयश=बदनामी

आस्था=श्रद्धा

साधना = अभ्यास

दीक्षा=गुरुमन्त्र

अनायास=अचानक

वृद्धि=बढ़ती

प्रभाव=असर

विकसित=फैलकर

साकार=रूप रंग वाला

निराकार = रूप रंग हीन

स्थापित=कायम

अवतार=जन्म लेना (ईश्वर का जन्म लेना)

खण्डन=गलत सिद्ध करना

वास्तविक=असली

पांडित्य=विद्वत्ता

तत्व=सिद्धांत

जंत्र=बाजा

हार = वाला

आन=शान

सुभाय=स्वभाव, आदत

गहि=पकड़े

थोथा=खाली

उदर=पेट

सांई=मालिक

जिउ=जीव

नाना = बहुत

गोधन=गाय-बैल

गजधन=हाथी

बाजि=घोड़ा

खान=भण्डार

आरसी=आईना, दर्पण

लखा=देखना

अलख = दिखाई न देने वाला

गर्व=घमण्ड

काल = मृत्यु

कर = हाथ

केश=बाल

केरा = का

अस=ऐसा

परभात=सवेरा, प्रभात
जस=जैसा
पीर=पण्डित
पीर=कष्ट
काफिर=पापी
तासों=उससे
धाय=दौड़कर
अंतर=फर्क, भेद
ऊपजे=पैदा हो
भखैं=खाते हैं।
संचै=जमा करती हैं
परमारथ=उपकार
धरा=रखा
अहार=खाना
जुग=समय
भया=हुआ
कुंडल=नाभि, ढुंडी
मृग=हिरन
घट=शरीर
पीव=प्रियतम
तर=नीचे
जनि=मत
हेत=प्रेम
हरिजन=परमेश्वर के भक्त

मुलुक=देश, ज़मीन
ई=इस
पैगम्बर=अवतार
परजा=प्रजा, रैय्यत
धरनि=पृथ्वी
भुवन=दुनिया
ठाठ=ढाँचा
ऐंचत=खींचते
निकसत=निकलता
हंस=आत्मा
अगम=जिस पर चला न जासके
पन्थ=रास्ता
सूरे=वीर
दोज़ख=नरक
जोति=ज्योति, प्रकाश
ख़ाक=धूल
भांडे=बर्तन
काष्ठ=लकड़ी
व्यापक=फैला हुआ
अरूपै=रूप, आकार
मूए=मर गए
भरम=भेद
रसरी=रस्सी
आछत=होते हुए

उपासा=भूखा

मलिक मुहम्मद जायसी

अङ्कित=चित्रित लिखा
एकरूप=अभिन्न
लौकिक=सांसारिक
अलौकिक=संसारसे ऊपर ईश्वरीय
अध्यात्मिक=आत्मा और परमात्मा संबन्धी
कलाम=कथन, कहना
संस्कृति=सभ्यता
श्रेयस्कर=शुभ
उत्कृष्ट=ऊंचे
दुलारी=प्यारी
सुआ=तोता
मँजारी=बिल्ली
पाँखा=पङ्ख
ढाँखा=ढाँख, पलास
जांवत=जन्मते ही
भख=भक्ष, भोजन
पाहन=पत्थर
पतङ्ग=पतिंगा, कीड़ा
सँवर=स्मरण, याद
लहि=लेकर, पाकर
बिछोह=वियोग

सँवरना=स्मरण
छूँछा=खाली
असत=अस्त
गहनहिं=ग्रहण को
नखतन्ह=नक्षत्रों
पालि=बाँध
चुये=गिरे
उये=उदय हुए
छिहुरि=छिटक, बिखर
सँकेत=संकुचित
सुअटा=सुआ, तोता
दहुँ=क्या जाने
परेवा=पक्षी
तहिअइ=तभी
बाटइं=रास्ते
पाहाँ=से
लीले=निगले
गाड़=दबाना
ढीले=छोड़े
कलि=आराम
बिआध=व्याधा, शिकारी
ढुका=घात लगाना
पइग=पैग, कदम
चाँपत=चाँपता, दबाता

हिअउ=हृदय में
आऊ=आयु
पराहीं=भागे
खाँचा=पक्षी फँसाने का बांस
लासा=गोंद
अरुझा=उलझ गया
मेलेसि=डाला
ढेली=झौआ
खरभरहीं=खलभली करें
उहन= पङ्ख
चिरिहार=चिड़ीमार
अउ=और
लगी=लग्गी, बाँस
जार=जाल (जाल)
फांदा=कूदा
हिंडोल=झूला
बइरिन्ह=बैरियों
कुरआर=परिवार, कोलाहल
फरउरी=फलाहार
बिरिख-वृक्ष
आड़=ओट
धरा=पकड़ा
खुरुक=खटका
फांद=फन्दा
धरऊ=पकड़े
उघेला=उघारा
गिउ=गला
तिसिना=तृष्णा
खाधू=खा जाने वाली
छपाना=छिपा हुआ
अपाना=अपना
मसटि=चुप्पी

सूरदास

परिवार=कुटुम्ब
जन्मांध=जन्म से अंधे
लज्जित=शर्माए
गेय=गाये जा सकने वाले
प्रसाद गुण=सरलता
लालित्य=मधुरता
स्वाभाविक=बिना बनावट
सामञ्जस्य=मेल
वात्सल्य=छोटों के प्रति स्नेह
मूर्ति=प्रतिमा
नितांत=बिलकुल
मर्मस्पर्शी=हृदय को छूने वाली
सख्य=दोस्ती, मित्रता
अग्रणी=नेता
उडगन=तारा
खद्योत=जुगनू

टीका = व्याख्या
जा = जिस
जैहै = जायगा
बेग = जल्दी
काढ़ो = निकालो
सुमिरि = याद कर
जसकीरति = नेकनामी
दुर्लभ = कठिनाई से प्राप्त
सत्संगति = अच्छी संगति
अनत = दूसरी जगह
पच्छी = पक्षी
महातम = महात्म, महिमा, बड़ाई
दुर्मति = भ्रष्ट बुद्धि वाला
मधुकर = भौंरा
अम्बुज = कमल
कामधेनु = एक पौराणिक गाय जिससे मांगी हुई सब चीजें मिल सकती हैं।
छेरी = बकरी
मल्हावे = पुचकारे
अधर = ओठ
अन्तर = बीच
भामिनि = पत्नी
लौं = तक

लसति = शोभा देता
सुभग = सुन्दर
राजत = शोभा देता
मेघवा-धनुष = इन्द्रधनुष
चिकुर = ठोड़ी
हरत = छीनती
बगराई = फैलाता
कञ्ज = कमल
अलि-अवली = भौंरों का झुण्ड
सेत = सफेद
लुनाई = सुन्दरता
दुति = द्युति, चमक
बिज्जु = बिजली
जोवति = देखती
पावस = वर्षा
गाँची = डूबी
अवधि = समय
झूखी = खीजी
पतूखी = दोना
सुरभी = गाय
बच्छ = बछड़े
खरिक = बाड़ा
मुकताहल = मोती

मीराबाई

तल्लीन=डूबी हुई
अवस्था=उम्र
विस्मृत=भूली
व्यतीत=खतम
स्रोत=झरना
रूपेण=रूप से, तौर पर
अहर्निश=रात-दिन
उपासना=पूजा
तिलांजलि=छोड़ना
ईप्सित=चाहा हुआ
दृष्टिगोचर=दिखाई
विमुग्धकारी=मोहने वाले
मिश्रित=मिले हुए
आत्म-निवेदित=अपनी बात कहती हुई
लक्षित=जान पड़ती
प्रेमातिरेक=प्रेम की अधिकता
सरे=चले
निकस्या=निकला
कमठ=कछुआ
अपणायौ=अपनाया
खेवटिया=नाविक, मल्लाह
भव-सागर=संसार रूपी सागर
जोई=देखा
सगा=संबन्धी
त्रिविधज्वाला=तीनों ताप
नख-सिखौ=नाखून से शिखा तक, प्रत्येक अंग
श्रीभरन=ऐश्वर्य भरने वाले
मघवा=इन्द्र
तारनतरन=तारने वालों को तारने वाला
पीतांबर=पीला कपड़ा
विवेक=सद्बुद्धि
स्थावर=ठहरा हुआ
जगम=चलने वाला
कुदरत=प्रकृति
कुरबान=बलि
तन्दुल=चावल
चेतन=जीवित
अजर-अमर=न मिटने वाला
बन्दी=दासी
कानि=रीति
बिलोई=मथी
तारो=पार लगाओ
सरसो=पूरी होंगी
बारी=खिड़की

अविनासी=नाश न होने वाले
सुरत-निरत=ध्यान-मग्न होना
दिवला=दीपक
संसा=संदेह

गो० तुलसीदास

कृतियाँ=रचनाएँ, पुस्तकें
प्रसिद्ध=मशहूर
जीवित=ज़िंदा
अनुपस्थिति=गैर हाज़िरी
दौरे=दौड़े
अस्थि-चरम=हड्डी-चमड़ा
भवभीति=दुनिया के दुख
गाडर=भेड
बसीकरन=वश में करने वाली
परिहरु=छोड़ो
मसि=स्याही
कञ्चन=सोना
विटप=पेड़
भुअंग=साँप
परसुधर=परशुराम
माहुर=ज़हर
भूषन=गहने
भच्छ-अभच्छ=खाने और न खाने योग्य

सिद्ध=पहुँचे हुए
सचिव=मन्त्री
अपर=दूसरा
अहङ्कार=घमण्ड
दहत=जलाता
बांचे=बचे
उपल=ओले, पत्थर
कुलिस=वज्र
चितव = देखत
बक=बगुला
विडम्बना=उपहास
ग्रह=नक्षत्र
भेषज=दवा
पट=कपड़ा
परदार-रत=दूसरे की स्त्री से प्रेम करने वाला
पाँवर=कायर
मनुजाद=राक्षस
जूझे=लड़ने
बूझिबो=पूछना
डहके=धोखा देना
डहकाइबो=धोखे में आना
सूर=वीर
विद्यमान्=उपस्थित

रिपु=दुश्मन, बैरी
दीरघ=बड़ा
कटुवच=कड़वे बचन बोलनेवाला
पैरिबो=तैरना
सहसबाहु=सहस्र भुजा वाला सहस्रबाहु
दसबदन=दस मुख वाला, रावण
सुत-बनितादि=पुत्र-पत्नी आदि
स्वारथ-रत=मतलब साधने में लगे हुए
बिरञ्चि=ब्रह्मा
ललित=सुन्दर
ललन=लड़का, बच्चा
पौढ़ि=लेटना, सोना
भोर=सवेरा
झँगुली=ढीला कुरता
महर=माँ
वारिद=बादल
पेखि=देखकर
गृही=गृहस्थी
विरति=वैराग्य
रत=लगा हुआ
दामिनि=बिजली
दमकि=चमक

जलद=बादल
नवहिं=झुकते हैं
बुध=विद्वान
छुद्र=छोटी
खल=दुष्ट
डाबर=गन्दा
भा=हुआ
जलनिधि=समुद्र
हरित=हरी
तृण=तिनके, घास
संकुलित=भरी हुई
पन्थ=रास्ता
पाखण्ड=मिथ्याधर्म, ढोंग
विवाद=चर्चा, तर्क-वितर्क
ध्वनि=आवाज़, बोल
बटु=ब्रह्मचारी
नवपल्लव=कोंपल, नये पत्ते
अर्क=आक
जवास=एक कांटे वाला पौधा
उद्यम=परिश्रम
धूरि=धूल
महि=पृथ्वी
तम=अँधेरा
दम्भिन=घमण्डियों

वृष्टि=वर्षा
स्वतन्त्र=आज़ाद
निरावहिं=नींदते हैं
मद=प्रमाद, नशा
चक्रवाक खग=चकवा पक्षी
ऊसर=बञ्जर
जन्तु=जानवर
संकुल=जमा
भ्राजा=शोभा देती है
पथिक=राहगीर
चल=चञ्चल
मारुत=हवा
बिलाहिं=छिप जाते हैं
मेघ=बादल
निबिड़=घना
जिमि=जैसे
विगत=समाप्त
उदित=प्रकट हुआ
अगस्त=एक नक्षत्र
शोषा=सुखा दिया
सरिता=नदी
सर=तालाब
सुकृत=पुण्य
पङ्क=कीचड़

रेणु=धूल
मीना=मछली
तापस=तपस्वी, साधु
वणिक=बनिया
श्रम=महनत
आश्रमी=आश्रम वाले
अगाधा=गहरा
शरण=आश्रय
निर्गुण=गुणों से परे, ईश्वर
सगुण=ईश्वर का साकार रूप
मुखर=वाचाल
रव=आवाज़
शरदातप=शरद् ऋतु का घाम
अपहरई=दूर करता है
पातक=पाप
टरई=दूर होते हैं
मशक=मच्छर
दंश=डांस
त्रासा=डर
पतँगा=सूर्य
महीप=राजा
भूति=भस्म
त्रिपुण्ड=शिवभक्तों का तिलक
रिसिवस=गुस्से में

अरुण=लाल
वृषभ=बैल
छाला=खाल
कटि=कमर
बसन=कपड़े
तूण=तरकस
कुठार=परशा
भृगुपति=परशुराम
कराला=भयङ्कर
भुआला=राजा लोग
बहोरि=फिर
नावा=झुकाया
पद-सरोज=चरण कमल
ढोटा=पुत्र
जोटा=जोड़ा
मार=कामदेव
मद=अभिमान
मोचन=दूर करने वाले
सन=से
चापखण्ड=धनुष के टुकड़े
नतु=नहीं तो
कुटिल=दुष्ट
नाग=पहाड़
अर्धनिमेष=आधा क्षण

कल्प=सृष्टि की रचना औ
प्रलय के बीच का सम
विषाद=दुख
भीर=तकलीफ
भञ्जनिहारा=तोड़ने वाला
आयसु=आज्ञा
कोही=क्रोधी
बिलगाइ=अलग होकर
बिहाइ=छोड़कर
केतू=पताका
क्षतिलाभ=नुकसान-फ़ायदा
जीर्ण=पुराना, सड़ा हुआ
भोरे=धोखे
बोलि=समझकर
बधौं=मारता
विश्व-विदित=दुनिया भर
मशहूर
द्रोही=दुश्मन
भुजबल=बाहुओं की शक्ति
विपुल=बहुत
महिदेवन=ब्राह्मणों
अर्भक=बालक
दलन=मारने वाला
भट=बहादुर

बतिया = नरम फल
तर्जनि = अँगूठे के पास की अँगुली
सरासन = धनुष
महिसुर = ब्राह्मण
पां = पैरों
राकेश = चन्द्रमा
निरंकुश = मनमानी करनेवाला
अबुध = मूर्ख
असंकू = निडर
कवल = ग्रास
खोटि = दोप
हटकहु = मना करो
वृत्त = स्वभाव
अछोभा = क्लेशरहित
समर = युद्ध
कौशिक = विश्वामित्र
गाधिसुअन = विश्वामित्र
व्यवहरिया = बोहरे, महाजन
निवारे = रोका, मना किया
छोहू = दया, प्रेम
अनुहरै = मेल खाता
मीचु = मौत
अनुचर = पीछे चलने वाला,
दाया = दया
पिराने = दुखे
मष्ट = चुप
कनकघट = सोने का घड़ा
जुगपानी = दोनों हाथ
सुजाना = चतुर
बररे = बर्र, ततैया
विदुषहिं = दोष देते
बँध = दासता
नायक = नेता, मुखिया
बाम = विरुद्ध
दैव = भाग्य
गेहू = घर
प्रबोध = संतोप, दिलासा
सम्मत = राज़ी से
रज = धूल
सिसु = बालक
सरवरि = बराबरी
पुनीत = पवित्र
सरुष = गुस्से में
स्रुवा = आहुति डालने का पात्र
समिध = यज्ञ में डाली जाने वाली लकड़ी
सेन = सेना

चतुरंग = हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदलोंयुक्त
विदित = मालूम
निदरि = निंदा करता हुआ
दाप = अभिमान
अहमिति = घमण्ड
पिनाक = धनुप
दनुज = दैत्य
सकाना = डरा
पटल = पलक
प्रफुल्लित = खुश

नरोत्तमदास

सूक्ष्म = बारीक
निरूपण = विचार
वैभव सम्पन्न = धनी
उपलब्ध = प्राप्त
श्रवणन = कानों में
पीत = पीला
वैजयन्ती = श्रीकृष्ण की माला
चक्र = एक शस्त्र
पद्म = कमल
सिगरे = सारे
हितू = भला चाहने वाले
कन = दाने, अनाज

तपोधन = त्याग का धन, त[illegible] का धन
सीत = ठंड
ठक = ज़िद
लढ़ा = बैल गाड़ी
अटा = हवेली
ललाट = भाग्य, कपाल
नीकी = भली
वित्त = शक्ति
चटसार = पाठशाला
छँडिया = पहरेदार
नेरे = पास
हुलास = खुशी
खूंट = छोर
बाली = गेहूं की बाल
बूंट = हरे चने
बारवधू = वेश्या
देवनारि-अनुहारिका = अफ्स[illegible]राओं के समान
कीर = तोता
केकी = मयूरी
सुक = तोता
सारिका = मैना
अश्व = घोड़ा

पत्ति=पैदल सेना
सुवर्नमयी=सोनेकी
गोन=जाना
लटी=तार-तार
उपानह=जूता
चकि=चकित, भौंचक्का
अभिरामा=सुन्दर
कल्पद्रुम=एक पौराणिक वृक्ष जो मनचाही वस्तु देता है।
खखेर्‌यो=आशंका, खटका
सुमेरु=एक पर्वत
रंक=कंगाल
जोये=देखे
तिय=स्त्री
बानि=आदत
प्रवीने=अभ्यस्त
पोट=पोटली
अछोट=पूरी

रहीम

पदाधिकारी=हाकिम
संरक्षक=देख रेख करने वाले
मनुष्यता=इंसानियत
स्नेही=प्रेमी
सेनापति=सेनाको चलाने वाला
सम्पत्ति=धन-दौलत
अनुभव=तजुर्बा
मार्मिक=असर डालने वाली
वाकयात=घटनाएँ
अमरवेली=एक बेल जो बिना जड़ के हरी रहती है।
मूल=जड़
प्रतिपालत=पालता है
उरग=सर्प
तुरँग=घोड़ा
बार=देर
दाव=आग
कदली=केला
स्वांति=विशेष जल, एक नक्षत्र
जलधि=समुद्र
दुरयो=छिपा
हन्यो=मारा
भौन=घर
फरज़ी=वज़ीर
संचहि=जमा करता है
नात=संबन्ध,, रिश्ता
असवार=सवार
अनखाय=नाराज़ हो
स्वान=कुत्ता

चेत=होश, अनुभव
दीठ=दृष्टि
पयान=जाना
अनहित=अप्रेम
अठिलैहैं=इठलायँगे, हँसी उड़ावेंगे।
गोय=छिपाकर
जलज=कमल
ऊबरे=उन्नति करता
पछोर=फटक

बिहारी

विस्तार=फैलाव
काव्य-चमत्कार=कविता की कुशलता
पुरस्कार=इनाम
झाईं=झलक
काछनी=घुटनों तक पहनी हुई धोती
बानिक=रूप
जोई=देखी
प्रतिबिंबित=झलकती
अजौं=अब भी
गुञ्जन=घुँघचियाँ
लसति=शोभा देती है
छनि=क्षण भर
नीलमणि=नीलम
सैल=पहाड़
आतप=घाम
काढै=निकाले
सिरजोई=बनाया
बूड़े=डूबे
पयोधि=समुद्र
पगार=पैदल पार की जाने योग्य नदी
बित=शक्ति
मोप=मोक्ष, छुटकारा
आंटे=लाग-डांट
सरत=चलता
दमामो=ढोल
निसक=कमज़ोर
बिरद=स्तुति, प्रशंसा
नलनीर=नल का पानी
बरु=भलेही
चटक=शोभा, चमक
राजस=रजोगुण, घमण्ड
औथरे=-थला, कमगहरा
गलीति=जीर्ण-शीर्ण अवस्था को पहुँचना

बौरात = पागल होता है
मयङ्क = चन्द्रमा
अपत = बिना पत्तों का
विडारि = निकाल
कुरंग = हिरन
निदाघ = ग्रीष्मऋतु
नवदल = नये अंकुर
आचमन = पीना
लोकप्रिय = लोगों में प्रिय
अत्यन्त = बहुत

केशवदास

रये = मस्त हुए
हुतो = था
लहै = लें
दुकूल = दुपट्टा
धाम = घर
छुधिपपास = भूख-प्यास
विद्वद्विनोद = विद्या और विनोद
अशेष = सारा
पोषि = पालकर
राजत = शोभा देता
दलिए = कुचलिए
जोग-जाग = योग-यज्ञ
पंगु = लँगड़ा
पण्डु = पांडु रोग वाला
धनञ्जय = अग्नि, चिता
झारहि = ज्वाला
मधुरान्न = मिठाई
वाच = वाणी
कृच्छ = दुबला
अतीतहीं = खतम हो
जनक-तनया = सीता
निकेत = घर
चन्द्रवदनि = चन्द्रमुखी
गजगामनि = हाथी जैसी चाल वाली
जलजनैनि = कमल जैसी आंखों वाली
मांझ = में
गह्वर = खाई
दव = आग
परिताप = दुख
उछाह = उत्साह
ब्रह्म-रंध्र = मस्तक के बीच का भाग
तूरि = तोड़कर

भूषण

ओजस्वी = ज़ोरदार

जंभ = एक राक्षस का नाम
बाड़व = समुद्र में लगने वाली आग
कुंभ = समुद्र
दंभ = घमंड
बारिबाह = बादल
रतिनाह = कामदेव
रामद्विजराज = परशुराम
दावा = वन की आग
द्रुमदंड = वृक्षों की शाखाएँ
बितुंड = हाथी
तमअंस = अंधकार
बाजिराज = श्रेष्ठ घोड़ा
पायहीन = बिना पाँव के
लोन = छिपे
कुलिआलम = सारा संसार
तीर = जितनी दूर तक तीर मार करता है उसे तीर कहते हैं।
ललकति = इच्छा करता है।
बलकत = गुस्सा करता
चकत्ता = औरंगज़ेब
दहसति = डर
चाह = खबर
करषति = खटकती

बिलखिबदन = उदास मुँह
नारी = नाड़ी
हहरि = डरकर
भरकत = भड़कती
दरकति = फटती
कत्ता = तलवार जैसा एक शस्त्र
कराकनि = कड़ाके, चोट
कटक = सेना
अगारन = महलों में
पगारन = चहार दीवारियों
कहाकीवी = क्या करेंगी
नीवी = नाड़ा, इज़ारबन्द
मुरचान = मोरचों
दावा = साहस
जोट = समूह
गैरमिसिल = अनुचित
गुसैल = क्रोधी
बलकनलाग्यो = बिगड़ उठा
तमक = क्रोध
पियरे = पीले।
मंदिर = घर, महल
मंदिर = पहाड़
कंदमूल = मिठाई
कंदमूल = साग-पात

तीन बेर = तीन दफ़ा
तीन बेर = तीन बेर
भूषन = जेवर
भूषन = भूख से
बिजन = पंखा
बिजन = जहां कोई आदमी न हो, जंगल
नगन = नग, जवाहरात
नगन = नंगी
जड़ाती = जड़वाती
जड़ाती = ठंडी मरती

वृंद

दृष्टांत=उदाहरण
सौर=ओढ़ने का कपड़ा
डुलाए=हिलाए
भेषज्ञ=दवा
प्रसंग=अवसर, मौका
विभौ=वैभव, शान
रोपै=लगावे
बिरवा=पेड
करी=हाथी
तोय=पानी
रजक=धोबी
तूल=रूई
हरुवो=हलका
याचक=भिखारी

गिरधर कविराय

नीति विषयक = व्यावहारिक ज्ञान-सम्बधी
व्यावहारिक=काम आने वाला
भ्रमण=घूमना
यात्रा=भ्रमण
पाहुन=महमान
लेखा=हिसाब
बेगरजी=बिनामतलब
बिसरि=भूल
सुहावन=प्रिय
ठाकुर=मालिक
तातो=गरम
करतूति=कार्य
पौहरि=घर
प्रमान=पर
अंक=अंग

भारतेंदु हरिश्चन्द्र

सिद्धहस्त=कुशल
सूत्र-पात=प्रारम्भ
श्रेय=पुण्य

समस्या=प्रश्न
परिवर्तन=अदल-बदल
साहित्य-सृष्टा =साहित्य-लेखक
प्रसार=फैलाना
बखान्यो=कहा, तारीफ़ की
भुज=हाथ
गर=गले
विक्रम=बहादुरी
वंदत=प्रणाम करते हैं।
रसना = जीभ
धरा = पृथ्वी
कपाल-क्रिया=मुरदे को जलाने पर खोपड़ी फोड़ने की क्रिया
दृग-कोर=आँखों की चितवन
निहारत=देखते
कफ़न=मुरदे पर लपेटा जाने वाला कपड़ा
निसानाथ=चन्द्रमा
चारु=सुन्दर
नवबाल=नई युवती
चौतनी=टोपी
जोहिं=देखें
हीरक=हीरा
पोहत=पिरोती

मनोरथ=अभिलाष, चाह
चन्द्रकांतमणि= मणि विशेष
द्रवित=बहाती
सुधा=अमृत
ब्रह्म-कमंडल=साधु
मंडन = पुष्ट करना, भरना
भव-खंडन=दुनिया के बंधन दूर करना
सुर-सम्बल=देवताओं का सर्वस्व
ऐरावत=इंदु का हाथी
हिम=बर्फ़
नग=पहाड़
कल = सुन्दर
सगर-सुअन = राजा सगर के पुत्र
सठसहस = साठ हज़ार
परस = छूकर
संचारन = प्रवेश करना
मढ़ी = झोंपड़ी
धौंसा = नगाड़ा
साका = दबदबा

श्रीधर पाठक

यत्र-तत्र = इधर-उधर
प्रकृतिमूलक = प्रकृति संबन्धी

सुषमा = सौंदर्य
अपेक्षनीय = वांछित, चाहे हुए
सर्जना = रचना
सौष्ठव = अच्छी गठन, सुसंगनन
स्थायी = कायम रहने वाला
वारिद
जलधर
धाराधर
पयोद
} बादल
बकतीय = बगुली
बङ्क = बाँका
कलुस = कालिमा
हर = दूर करने वाला
प्रखर = तेज़
प्रहार = आघात
तुङ्ग = ऊँचा
शिखर = चोटी
चर = चलने वाला
नभ-यान = आकाश में उड़ने वाला विमान
पवमान = हवा
पुरातन = पुराना
अवलम्बन = आधार
दिव्य-छटा = स्वर्गीय शोभा

दुःहि = शीघ्र ही
भेक = मेंढक
अभिषेक = राजतिलक
पोखर = ताल
कृतकृत्य = सफल
संवत्सर = खेती
सस्य = धान
भुवि = भूमि
मरकत = पन्ना
मानिक्य = लाल
आतम = आत्मा
सुठि = सुगठित
चपल = चञ्चल, फुर्तीला
वय = उम्र
सुमंजु = मधुर
प्रवीणता = कुशलता
अलक्ष्य = दिखाई न देने वाला
पुरंदर = इन्द्र
किंकरी = अप्सरा
वियोग-तप्ता = वियोग से तपी हुई
भोग-भुक्ता = दुखी
प्रकोपन = गुस्सा
विनय = प्रार्थना
दाक्षिण्य = प्रसन्नता

बानक=रूप

गत=तान

ब्रह्मांड=संपूर्ण विश्व

नाथूराम शंकर

हाज़िरजवाब=तुरंत जवाब देने वाले

प्रतिभाशाली=तेज़ बुद्धि वाले

अतिक्रम=ज्यादती

अत्युक्ति=बढ़ाकर कहना

भानु=सूर्य

प्रचण्ड=तेज़

प्रतापी=शक्तिशाली

भवके=संसार के

आतप=गरमी

बात=हवा

झाबर=दलदल

काँदा=कीचड़

अवनीतल=पृथ्वी

तीत=गीलापन

रुद्ररोष=भीषण क्रोध

स्वेद=पसीना

उष्णोदक=गरम पानी

दिवाकर=सूर्य

पजारे=जलावे

कढ़े=निकले

हुताशन=आग

घमस=गरमी

तरुपुञ्जों=पेड़ों के झुण्ड

बयार=हवा

वापी=बावड़ी

बलाहक=बादल

कालानल=मृत्यु की आग

अयोध्यासिंह उपाध्याय

रिटायर होकर=छोड़कर

मर्मभेदी=असर डालने वाला

धाता=विधाता

तरणि=सूर्य

दग्ध=जलता

व्रज-अवनि=व्रजभूमि

बासरों=दिनों

बीची=लहर

स्वमणि=अपनी मणि

गोकुलाधीश=गोकुल का स्वामी, नन्द

प्रथित=फैले हुए, विस्तृत

संक्षुब्धा=क्रोधित

विक्षिप्तों=पागलों

भयद=डराने वाली

सूचिभेद्या=गहरे अँधेरे से भरी हुई

अमा=अमावस्या

असित=काली

सदन=घर

एकाकी=अकेले

सदन=घर

क्षिप्त=पागल

अधिप=राजा

निपतित=गिरी

उन्मूलिता=उखड़ी

खिद्यमाना=उदास

संज्ञा=होश

कल्पलतिका=एक पौराणिक बेल जो सब चीजें देती है

कामद=इच्छित फल देने वाली

कलित=सुन्दर

पूततम=सबसे पवित्र

ओक=स्थान

कमनीय=सुन्दर

लोहभूत=लोहे के समान

अभिमत=चाहे हुए

मराल=हंस

मनोरम=सुन्दर

भूरि=बहुत

कोर=चितवन

अनालोकित=अन्धकार से भरा

अभिनव=नया

ओज=जोश

अनुरंजन=प्रसन्न करने

अविलम्ब=बिना देर किये

अनुभूति=तजुर्बा

मैथिलीशरण गुप्त

अलंकृत=विभूषित

मनोवैज्ञानिक=मन की वृत्तियों को ध्यान में रखने वाला

मौलिक=नया, किसी की नकल या अनुकरण नहीं

प्लावित=सींच

पर्त्त=तह

गर्त=गड्ढा

आवर्त-विवर्त=चक्कर

आलोड़-विलोड=मथना-हिलना

स्वतः=खुद

गढ़=बना

अनगढ़=बिना गढ़े, एड़े-टेढ़े

नवगति=नई चाल
अंतरिक्ष=आकाश
धूम=धुआं
विश्राम=आराम
अंकुर=नए उगे हुए दल
निरतन्त्र=बिना प्रयत्न

रामनरेश त्रिपाठी

ग्राम्यगीत=देहाती गाने
चतुर्दिक=चारों दिशाओं में
निरंतर=सदा
अमित=बेशुमार
परीक्षा - स्थल=इम्तिहान की जगह
आत्मबल=अपनी ताकत
विज्ञ=विद्वान, ज्ञानी
अविरल=अटूट
मेधा = बुद्धि
आश्रय, छाया, संरक्षण
क्रांति=उथल=पुथल
विशृंखल=बिखरी हुई
महामाया=बड़ा धोखा
भ्रांति=धोखा
विषम=विकट

स्वजीवन=अपनी ज़िन्दगी

जयशंकर प्रसाद

आख्यायिका=कहानी
युगांतरकारी=ज़माना बदलनेवाले
रहस्यपूर्ण=भेद से भरी हुई।
क्लिष्ट=कठिन
प्रवर्त्तक=शुरू करने वाले
पारितोषिक=इनाम
कछार=नदी किनारे की भूमि
नश्वरता=नाश होने का स्वभाव
पादप=पौधे
शुचि=पवित्र
संधि=मेल
दर्शन=तत्व-ज्ञान
वाद=मत
स्निग्ध=मधुर
परिषदें=सभाएँ
मस्तिष्क=दिमाग
पार्थिव=सांसारिक
भोग-विभूति=ऐश-दौलत
वक्ष = छाती
आरण्यक=जंगल के
तथागत=बुद्ध भगवान

मुक्ति=जीवन से छुटकारा
अमिताभ=महाप्रकाश
समुदय=जमा होना
मन्द्र=प्रसन्न
साक्षी=गवाह
पतङ्ग = पतङ्गा, शलभ
पुञ्ज=ढेर, भीड़
रक्तिम=लाल
विजित=हारा हुआ
दूरागत=दूर से आने वाला
नत-मस्तक=सर झुकाए
अनङ्ग=कामदेव
आसव=शराब
संसृति=सृष्टि
विक्षत=घायल
अनुलेप=मरहम
भृङ्ग=भौंरे

माखनलाल चतुर्वेदी

ओत-प्रोत=भरा हुआ
व्यञ्जना=व्यक्त करने की शक्ति
प्रासादिकता=सरलता
तारल्य-तरंगिनी=प्रवाहपूर्ण नदी
नैसर्गिक=स्वाभाविक
सम्राट=बादशाह
बटमार=लुटेरा
हिमकर=चन्द्रमा
उभय=दोनों
सर्वनाश=सब कुछ ख़तम होना
तमोरात्रि=अन्धकारपूर्ण रात
भेद=छेदकर
हीतल=हृदय
केहरि=शेर
काकिल=ध्वनि
सुरपुर=स्वर्ग
नयनोदक=आँखों का पानी, आँसू
मोदक=मिठाई

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

वृत्ति=हाल
शृंग=चोटी
सुर-सरिता=गङ्गा
कांत=सुन्दर
कामिनी=स्त्री
सुरा=शराब
खर=कठोर
सरसिज=कमल
योग=समाधि

रागानुग=भक्ति-श्रद्धा का दास
मनोरंजिनी=मन को भाने वाली
नन्दनवन=स्वर्ग का बागीचा
सच्चिदानन्द=परमेश्वर
मनोमोहिनी=मन को मोहने वाली
दुस्तार=कठिनाई से पार किया जा सकने योग्य
निशीथ=रात्रि
अचला=अटूट
कुन्द=एक फूल
इन्दु=चन्द्रमा, कपूर
अरविंद=कमल
शुभ्र=सफेद
व्याप्ति=फैलाव

सुमित्रानन्दन पन्त

कलरव=मधुर स्वर
अवाक=भौंचक्के
सुकुमार=कोमल
स्तब्ध=निश्चल
ज्योत्स्ना=चाँदनी
चकित=अचम्भे में
निमन्त्रण=न्योता
भीमाकाश=भयानक आसमान
तमसाकार=साक्षात् अँधेरा
इङ्गित=इशारा
विधुर=दुखी
वात=हवा
तुमुल=घने
तन्द्रा=नींद
सहचर=साथी
विवर्तन=बदलना
उन्मीलन=खोलना
निखिल=सारा
वासुकि=शेषनाग
सहस्रफन=हज़ार फन वाला
लक्ष=लाख
अलक्षित=दिखाई न देने वाले
फेनोच्छ्वसित=फेन निकलते हुए
स्फीत=बढ़ा हुआ
विवर=बिल
वक्र-कुंडल=टेढ़ी कुंडली, साँप का कुंडली मारना
दिङ्-मंडल=सारा विश्व
दुर्जेय=जिसे जीतना कठिन है।
विश्व-जित=विश्व को जीतने वाला

सुरवर=देव
नरनाथ=राजा
इन्द्रासन=इन्द्रका आसन
अनियंत्रित=बिना नियन्त्रण, आज़ाद
उत्पीड़ित=दुखी
मर्दित=पीसी हुई
प्रतिमाएँ=मूर्तियाँ
खंडित=टूटी
आधि=विपत्ति
व्याधि=संकट
वृष्टि=वर्षा
उत्पात=उपद्रव
वह्नि-आग
निरंकुश=मनकी करने वाला
विकच=खिला
कृमि=कीड़ा
वर्षोपल=ओलों की वर्षा

महादेवी वर्मा

अप्रतिम=जिसके समान दूसरा नहीं
निस्पन्द=गतिहीन
तृषित=प्यासा
अखण्ड=अटूट
सुहागिनी=सौभाग्यवती
पुलक=फड़क
प्रस्तर=पत्थर
क्रम=सिलसिला
आसक्ति=मोह
तारक=तारा
नीरव=मौन
अरुणोदय=सवेरा
रजनी=रात
निष्क्रय=विनिमय

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

संपर्क=मिलाप
लालन=बच्चा
खनक=बोल
औचक=अचानक
झँकृतियाँ=झंकारें
अलंकृतियाँ=शोभा
अस्थिरता=चञ्चलता
शैशवता=बचपन
हुलास=प्रसन्नता
व्याप्त=तल्लीन
सुविगत=अच्छी तरह मालूम
संस्कार=मनपर पड़नेवाला प्रभाव
मानवता=इन्सानियत